ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 05

जय जवान जय किसान जय विज्ञान जय अनुसंधान

स्वर्ण-जयंती वर्ष
2 फरवरी 2019 - 1 फरवरी 2020

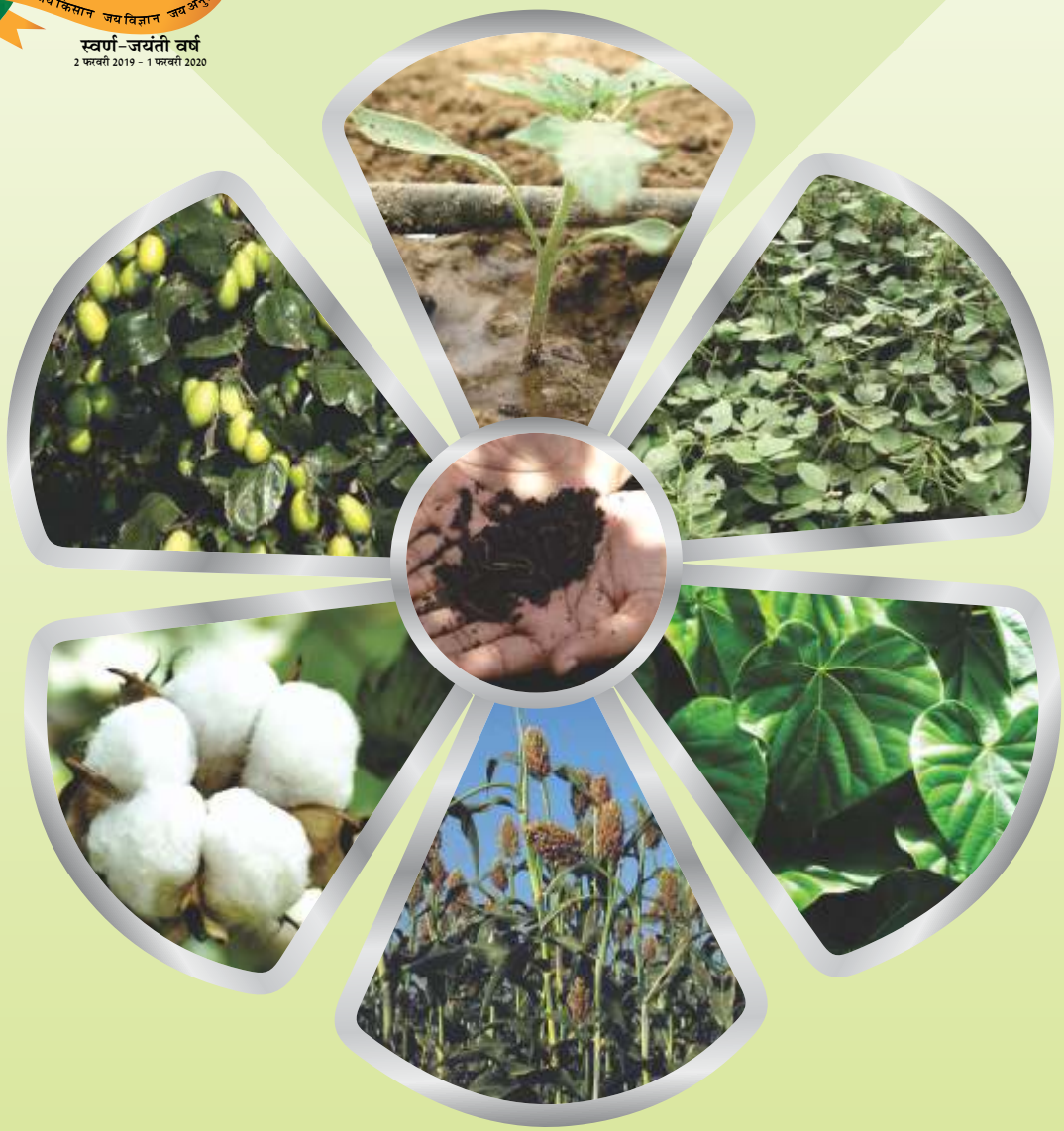

वार्षिक चंदा 150/- मई 2019 आजीवन सदस्यता 1500/-

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

ã कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | मई 2019 | अंक 05

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
जायद में मूंग की उन्नत खेती	- अमित कुमार, कौटिल्य चौधरी एवं सुशील कुमार सिंह	1
अनाज का सुरक्षित भण्डारण	- भूपेन्द्र सिंह, नरेन्द्र सिंह एवं सूबेसिंह	2
ज्वार– एक आदर्श चारा फसल	- सतपाल, पी. कुमारी एवं बी. एल. शर्मा	3
उत्तम बीज : महत्व तथा विशेषताएं	- सुषमा शर्मा, हेमेंद्र एवं वी. एस. मोर	5
बेर की उन्नत बागवानी	- रणबीर सैनी, सुरेन्द्र सिंह एवं मुकेश कुमार	5
गिलोय की खेती	- राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव	7
जैविक उर्वरक: आधुनिक कृषि प्रणाली की व्यापक आवश्यकता	- कविता रानी, लीला वती एवं कविता	8
जैव उर्वरक (माईकोराइज़ा) : भूमि की सेहत का वरदान	- जगदीश प्रसाद एवं दिनेश कुमार	9
वैज्ञानिक विधि द्वारा – कपास के मुख्य रोगों का उपचार	- मनमोहन सिंह, अनिल कुमार एवं राजबीर सांगवान	10
कृषि में पोटाश का महत्त्व	- सुशीला सिंह, सीमा सांगवान एवं जयन्त सिंधु	11
कृषि में माइकोराइज़ा की भूमिकाएं	- कविता रानी, कविता एवं कृष्ण यादव	11
कपास में खरपतवारों की रोकथाम	- विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं सतबीर पूनिया	12
फलों द्वारा निर्मित : मुरब्बा एवं कैण्डी	- एकता, राकेश गहलौत एवं तनु मलिक	21
पोपलर आधारित कृषि वानिकी में औषधीय पौधों का रोपण	- बिमलेन्द्र कुमारी एवं तरूण कुमार	21
थ्रैशर प्रयोग के समय होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव	- विनोद कुमार, मुकेश जैन एवं नरेन्द्र	23
सौर ऊर्जा संयंत्र से अधिकतम लाभ : कैसे प्राप्त करें	- विनोद कुमार एवं मुकेश जैन	25
सिंचाई : साधन, आवश्यकता एवं विधियाँ	- नरेंद्र कुमार, अमनदीप सिह एवं प्रमोद शर्मा	26
गांवों को प्रदूषण से बचाने के उपाय	- दिवेश चौधरी, ममता एवं अनिल कुमार	27
Drip Irrigation for Horticultural Crop Production	- Sumit Deswal and Manender Singh	28
Peri-urban Agriculture in Haryana : Need, Strategies and Challenges	- Rajesh Lather, Vandna and Gurnam Singh	30
Giloy : Role of Herbs in Feeding Poultry	- Swati Ruhil, Vikas Khichar and Vijayata Choudhary	31

स्थाई स्तम्भ : जून मास के कृषि कार्य 13

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह–निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह–निदेशक (हिन्दी)

सुनीता सांगवान
सम्पादक (अंग्रेजी)
प्रकाशन अनुभाग

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)
विस्तार शिक्षा निदेशालय

आवरण एवं सज्जा
राजेश कुमार

लेखकों से अनुरोध : हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट** का ही प्रयोग करें। अपना लेख हमें ई–मेल पर भी भेज सकते हैं **haryanakhetihau@gmail.com**

जायद में मूंग की उन्नत खेती

- **अमित कुमार, कौटिल्य चौधरी एवं सुशील कुमार सिंह**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मूंग जायद की एक प्रमुख दलहनी फसल है व इसका वानस्पतिक नाम विगना रेडिएटा है। इसके दानों में 25 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है। मूंग की खेती सरसों व आलू की कटाई के बाद करने पर अतिरिक्त लाभ होता है। मूंग के पौधों की फली तोड़ने के बाद फसल के अवशेषों को भूमि में मिला दिया जाता है। यह हरी खाद की पूर्ति करती है, जिससे मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में सुधार होता है और मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। मूंग की खेती की उपज बढ़ाने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये।

मूंग की खेती के लिए दोमट भूमि उपयुक्त रहती है। पलेवा करके खेत तैयार कर ट्रैक्टर से बीज बुवाई करें व दो जुताई करने पर खेत तैयार हो जाता है तथा इसकी बुवाई का उपयुक्त समय 1 मार्च से 10 अप्रैल के बीच है। बीज दर 25-30 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर रखनी चाहिए।

बीज हमेशा उपचारित (बीज शोधन) करके बोना चाहिए। यदि बीज उपचारित नहीं है तो बीज को 2.5 ग्राम थाइरम या एक ग्राम कार्बेनडाज़िम से या 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करना चाहिये।

बीज को शोधन के बाद राइजोटीका 50 मि.ली. प्रति 10 किलोग्राम बीज के लिए प्रयोग करना चाहिए तथा टीके को 50 ग्राम गुड़ एवं 250 मि. ली. पानी में घोल कर बीज पर डालते हैं। यदि किसी रसायन से बीज उपचार करना हो तो टीके से उपचार करने से 12-24 घण्टे पहले करना चाहिये।

हरियाणा के लिए मूंग की प्रमुख प्रजाति इस प्रकार है:

प्रजाति का नाम	फसल अवधि	उपज क्विंटल प्रति हैक्टेयर
मुस्कान (एम एच 96-1)	70-75 दिन	10-12
सत्या	70 दिन	10-12
एम एच 421	60 दिन	10-12
एम एच 318	60 दिन	10-12

नोट : इसके अतिरिक्त मूंग की प्रजाति का चयन चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालयए आई.आई. पी.आर. कानपुर, दलहन विकास निदेशालय, भोपाल एवं क्षेत्र अनुसार अनुमोदित प्रजाति का चयन करें।

पलेवा के बाद पहली सिंचाई बिजाई के 20-22 दिन बाद करें तथा इसके बाद की सिंचाई 10-12 दिन बाद आवश्यकता अनुसार करते रहें।

बिजाई के समय 20 किलोग्राम नत्रजन 40 किलोग्राम फास्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर डालें। साथ ही नत्रजन को यूरिया, फास्फोरस को सिंगल सुपर फास्फेट एवं पोटाश को म्यूरेट ऑफ पोटाश के रूप में डाला जा सकता है। उच्च पोटाश वाली मृदा में पोटाश नहीं डाला जाना चाहिये।

खरपतवार नियन्त्रण के लिए मृदा में पहली निराई-गुड़ाई पहले पानी के बाद 20-25 दिन पर करने पर मूंग में खरपतवार नष्ट हो जाते हैं, साथ ही मृदा में वायु संचार बढ़ जाता है। यदि आवश्यकता हो तो दूसरी निराई-गुड़ाई 40-45 दिन पर करनी चाहिये। यदि खेत में निराई-गुड़ाई सम्भव न हो तो खरपतवारों का रासायनिक नियन्त्रण करना चाहिए। नियन्त्रण के लिए पेण्डीमैथालीन 30 ई.सी.. के 3.3 लीटर को 600-700 लीटर पानी प्रति हैक्टेयर में घोल कर बुवाई के 72 घण्टे के अन्दर फ्लैट फैन नोज़ल से छिड़काव करें। उन फसलों के लिए जो कतारों में बोई गई हों उनमें खरपतवार नियन्त्रण के लिए वीडर का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होता है।

पौध सुरक्षा : इन फसलों में इस समय कीड़ों का प्रकोप कम होता है मगर निम्न बालों वाली सूण्डी, पत्ताछेदक (फली बीटल), हरा तेला और सफेद मक्खी हानि पहुंचाते हैं। बालों वाली सूण्डी का समाधान 625 मि. ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. या 1250 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. को 600 लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें। इसी से पत्ती छेदक (फली बीटल) का समाधान हो जायेगा।

हरा तेला और सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 1000 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 625 मि.ली. डाइमेथोएट 30 ई.सी. (रोगोर) या 625 मि.ली. ऑक्सीडेमेटान मिथाइल 25 ई.सी. (मैटासिक्टॉक्स) को 600-700 लीटर पानी में मिला कर 2-3 सप्ताह के अन्दर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से छिड़काव करें। इससे मोजैक का फैलाव भी रुक जाता है।

रोग नियन्त्रण : मूंग की फसल में पीले चित्रवर्ण (मोजैक) रोग का प्रकोप होता है। इस रोग के विषाणु सफेद मक्खी द्वारा फैलते हैं और इसके नियन्त्रण के लिए अवरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए। यदि रोग किसी पौध में दिखाई दे तो उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। बिजाई के 20-25 दिनों के बाद 10-15 दिनों के अन्तर पर डाईमेथोएट 30 ई.सी. (रोगोर) या 625 मि.ली. ऑक्सीडेमेटॉन मिथाईल 25 ई.सी.. (मैटासिस्टॉक्स) या 625 मि.ली. फार्मेथियान 25 ई.सी. (एंथियो) या 1000 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 600-700 लीटर पानी में घोल कर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करें।

पत्तों का धब्बा रोग : इसके नियन्त्रण के लिए ब्लाईटॉक्स 50 या इण्डोफिल एम-45 को 1.5 किलोग्राम 500 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

पत्तों का जीवाणु रोग : इसकी रोकथाम के लिए फसल पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 600-800 ग्राम मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

फसल चक्र : अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए एवं भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने हेतु उचित फसल चक्र का होना आवश्यक होता है। जहां पर वर्षा आधारित खेती होती हो वहां पर मूंग-बाजरा-गेहूं और सिंचित क्षेत्रों में मूंग-गेहूं एवं सरसों का फसल चक्र अपनाना चाहिए, फसल चक्र में मूंग के होने से भूमि की उर्वता क्षमता अधिक हो जाती है।

अनाज का सुरक्षित भण्डारण

- भूपेन्द्र सिंह, नरेन्द्र सिंह[1] एवं सूबेसिंह[2]
सायना नेहवाल कृ. प्रौ. प्र. एवं शि. संस्थान
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में अनाज का उचित भण्डारण न होने से कुल पैदावार का लगभग 10-12 प्रतिशत नुकसान फसल की कटाई से लेकर इसके उपयोग तक हो जाता है जो कि प्रतिवर्ष लगभग 2500 करोड़ रुपए तक पहुंचता है। यह नुकसान मुख्यत: विभिन्न अवस्थाओं में कीट प्रकोप, चूहे, पक्षी, फफूंद जनित संक्रमण, अन्य जीव जन्तु और अत्यधिक नमी द्वारा आंका गया है। भण्डारित अनाज को सबसे अधिक हानि विभिन्न प्रकार के कीटों द्वारा ही होती है। भण्डार कीटों में कुछ कीट आंतरिक प्राथमिक तो कुछ बाह्य गौड़ भक्षी होते हैं। ऐसे कीट जो स्वयं दाने को सर्वप्रथम क्षति पंहुचाते हैं वे प्राथमिक कीट कहे जाते हैं। इनमें सूंड वाली सुरसरी, अनाज का छोटा छिद्रक व ढोरा प्रजातियां प्रमुख हैं। गौड़ कीट वे हैं जो बाहर रहकर भ्रूण या अन्य भाग को क्षति पंहुचाते हैं। इनमें आटे का कीट, खपरा बीटल, चावल का पतंगा आदि प्रमुख हैं। ये कीट दाने को खाकर खोखला कर न केवल अनाज की पौष्टिकता को प्रभावित करते हैं अपितु बिजाई के अनुपयुक्त बना देते हैं तथा प्रकोपित अनाज मनुष्य व पशुओं के उपयोग योग्य भी नहीं रहता है।

अनाज संक्रमण के प्रमुख कारण

1. अनाज में नमी की मात्रा का अधिक होना।
2. अनाज को खुले व नमी युक्त स्थान पर रखना।
3. अनाज ढोने वाले वाहन तथा रखने वाली जगह की सफाई न होना।
4. अनाज का उचित भण्डारण न होना (पुरानी बोरियां व स्थान को संक्रमण रहित न करना)।
5. भण्डारण के बाद उचित देखभाल न करना।

भण्डारण कक्ष एवं भण्डारण पात्र को कीट मुक्त रखने हेतु समुचित उपाय करना आवश्यक है जो निम्न हैं:

अनाज भण्डारण से पहले सावधानियां

- भण्डारण से पहले अनाज को भलीभान्ति सुखा लें तथा सुनिश्चित करें कि नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से कम रहे। दांतों के बीच दाना रखकर दबाने से यदि कड़क की आवाज़ के साथ दाना टूटे तो प्राय: नमी 10 प्रतिशत से कम रहती है।
- अनाज को कभी भी खुले में न रखकर किसी कमरे या गोदाम या टंकी में भण्डारित करें ताकि वर्षा या नमी से बचाया जा सके।
- अनाज ढोने वाले वाहनों की अच्छी तरह से सफाई कर लें ताकि उनमें कोई कीटग्रसित पुराना अनाज न रहे।
- अनाज भण्डारण के लिए प्रयोग होने वाले कमरे, गोदाम या पात्र जैसे कुठला इत्यादि के सुराखों और दरारों आदि को सीमेंट से बन्द कर दें।
- यदि इनमें पुराना अनाज पड़ा है तो उसे निकाल कर इन्हें अच्छी तरह साफ कर लें। यदि अनाज की टंकी में पुराना अनाज पड़ा है तो उसे निकाल कर टंकी को तेज़ धूप में रखें ताकि इसमें जो भी कीट हों मारे जाएं।
- भण्डारण कमरे या गोदाम को अच्छी तरह साफ करने के पश्चात् उसे 0.5 प्रतिशत मैलाथियान 50 ई.सी. (10 मी.ली. दवाई एक लीटर पानी में) का फर्श, दीवारों और छत पर छिड़काव करें। इस काम के लिए एल्यूमिनियम फास्फाईड की 7-10 गोलियां (3 ग्राम प्रति गोली) का प्रति 1000 घनफुट (28 घन मीटर) की दर से प्रद्युमन भी किया जा सकता है।
- यदि अनाज का भण्डारण बोरियों में करना है तो यथासंभव नई बोरियों का उपयोग करें।
- यदि पुरानी बोरियों को ही प्रयोग करना है तो 0.01 प्रतिशत फैनवलरेट 20 ई.सी. (1 मि.ली. दवाई दो लीटर पानी में) या साईपरमैथ्रिन 25 ई.सी. (1 मि.ली. दवाई ढ़ाई लीटर पानी में) या 0.1 प्रतिशत मैलाथियान 50 ई.सी. (2 मि.ली. दवाई एक लीटर पानी में) के घोल में 10-15 मिनट तक उपचारित कर इन्हें छाया में सुखाने के बाद ही भण्डारण हेतु प्रयोग करें।

भण्डारण के दौरान सावधानियां

- बोरियों में भण्डारित अनाज को गोदाम की दीवारों से कुछ दूरी बनाकर ही रखें तथा सीधे फर्श पर न रखकर लकड़ी के बने फ्रेम इत्यादि पर रखें जिससे विशेषकर मौनसून के समय अधिक नमी अनाज तक न पहुंच पाए।
- केवल बीज हेतु अनाज को कीड़ों से बचाने के लिए 250 ग्राम मैलाथियान 5 प्रतिशत धूड़ा प्रति क्विंटल अनाज की दर से मिलाकर भण्डारण करें तथा ऐसे अनाज को किसी भी अवस्था में खाने के काम न लें।
- दालों का भण्डारण मुख्यत: छोटे स्तर पर होता है जो कि घरों में भण्डारित होते हैं। इन्हें प्राय: ढोरा कीट के संक्रमण से सुरक्षित रखने के लिए अनाज के ऊपर व नीचे कोठियों में या भण्डारित स्थानों पर 7 सैं.मी. (3 इंच) मोटी रेत की तह बनाएं।
- ढोरा के प्रकोप से बचाव के लिए चना व दालों आदि पर 7.5 मि. ली. सरसों या मूंगफली का तेल या 4 मि.ली. सरसों या मूंगफली के तेल के साथ 1.75 ग्राम हल्दी प्रति कि.ग्रा. दानों की दर से अच्छी प्रकार मिलाकर लगाएं। उपचार के बाद इन्हें किसी प्लास्टिक या एल्युमिनियम या स्टील के डिब्बे में बंद करके रखें।

कीटग्रसित होने पर अनाज का बचाव

भण्डारित अनाज पर कीट आक्रमण प्राय: तभी रहता है जब वातावरण में नमी अधिक हो जो कि प्राय: मौनसून के समय होती है। इसलिए जुलाई-अक्तूबर के माह तक 15 दिनों के अंतराल पर समय-समय पर निरीक्षण कर उचित नियंत्रण हेतु कदम उठाये जा सकते हैं। जब अनाज में नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक हो जाए तो ऐसी स्थिति में किसी एक प्रद्युमननाशक द्वारा अनाज को उपचारित करें।

- एल्युमिनियम फास्फाईड की 1 गोली (3 ग्राम) को एक टन (10 क्विंटल) अनाज में या 7-10 गोलियां प्रति 1000 घनफुट (28 घनमीटर) की दर से कोठियों या गोदामों में प्रयोग करें तथा उपचार करने के 7 दिन तक पूर्ण रूप से हवा रहित सुनिश्चित करें।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, सदलपुर (हिसार)
[2]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

- अनाज में गोली रखते समय इस बात का विषेश ध्यान रखें कि गोली को हमेशा नीचे से 2 या 3 फीट ऊंचाई पर रखें क्योंकि इसमें से निकलने वाली गैस (फास्फीन) हवा से भारी होती है जो ऊपर से नीचे की ओर जाती है।
- एल्युमिनियम फास्फाईड की उपलब्धता न होने पर एक लीटर ई.डी.सी.टी. मिश्रण प्रति 20 क्विंटल अनाज के लिए या 35 लीटर ई.डी.सी.टी. मिश्रण प्रति घन मीटर के हिसाब से प्रयोग करके भी कमरे/गोदामों में कीड़ों को नष्ट किया जा सकता है।
- प्रद्युमन कीटनाशक केवल उन्हीं स्थानों पर प्रयोग करें जो कि भलीभान्ति बंद कर हवा रहित कर सके। ऐसा करने के लिए गोदाम/कोठी/टंकी व अन्य भण्डारण इत्यादि का वायुरोधी रहना अत्यंत आवश्यक है जो कि गीली/चिकनी मिट्टी के लेप से किया जा सकता है।

नोट:

- अब गोलियों के स्थान पर एल्युमिनियम फास्फाईड पाऊडर के रूप (पाऊच/सैशे) में भी विभिन्न मात्राओं (1.5, 5, 10 व 34 ग्राम) में उपलब्ध है। चूंकि गोलियों व पाऊडर दोनों में ही फास्फीन गैस की मात्रा 56 प्रतिशत ही रहती है। इसलिए पाऊडर वाली कीटनाशक भी इसी दर से प्रयोग कर सकते हैं।
- खपरा लगे गोदाम में एल्युमीनियम फास्फाईड और ई.डी.सी.टी. मिश्रण से प्रद्युमन करना आवश्यक है परन्तु ई.डी.बी. का प्रयोग बीज के लिए उपयोग हेतु अनाज में नहीं करना चाहिए।

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक नि:शुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह नि:शुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

ज्वार- एक आदर्श चारा फसल

- **सतपाल, पी. कुमारी एवं बी. एल. शर्मा**
चारा अनुभाग, आनुवंशिकी व पौध प्रजनन विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थव्यवस्था में पशुधन एवं पशुपालकों का महत्तवपूर्ण स्थान है। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे 70-80 प्रतिशत् ग्रामीणों के लिए पशुपालन आज भी उनकी आजीविका का आधार है। पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य व अधिक पशु उत्पादन (मांस, दूध इत्यादि) प्राप्त करने के लिए गुणवत्तापूर्ण हरे चारे की उपलब्धता अत्यावश्यक है। चारा फसलों में ज्वार गर्मी व खरीफ मौसम की एक महत्वपूर्ण फसल है। हरे चारे के रूप में ज्वार पशुओं की पहली पसन्द है। हरा व मीठा चारा, शीघ्र बढ़ने की क्षमता और अधिक चारा उत्पादन का गुण ज्वार को आदर्श चारा फसल बनाता है। ज्वार का पौधा कठोर होने के कारण प्रतिकूल परिस्थितियां जैसे अधिक तापमान और सूखे को सहन करने की क्षमता रखता है। इसीलिए इसे कम पानी या शुष्क क्षेत्रों में भी हरे चारे के लिए लगाया जाता है। हरे चारे के अलावा इसे सूखा चारा (कड़वी), साइलेज व 'हे' के रूप में भी पशु चारे के लिए उपयोग किया जाता है। ज्वार के हरे चारे में पौष्टिकता की दृष्टि से प्रोटीन (7 से 10 प्रतिशत), फाइबर (30 से 32 प्रतिशत) और लिग्निन (6 से 7 प्रतिशत) पाए जाते हैं जो अन्य चारों की अपेक्षा इसकी पाचन क्रिया, स्वादिष्टता एवं पशु स्वास्थ्य को बनाए रखने में अधिक उपयोगी होते हैं।

ज्वार की उन्नत किस्में

एच जे 541: यह लम्बी, मीठी व हरे चारे और बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त तथा एक-कटाई वाली किस्म है। इस किस्म की हाइड्रोसायनाइड विषाक्तता भी कम है। अधिक प्रोटीन व अधिक पाचनशील शुष्क पदार्थ होने के कारण इसकी गुणवत्ता अच्छी है। इसमें रोगों से लड़ने की अधिक क्षमता है। इसके हरे चारे की औसत पैदावार 200-225 क्विं./एकड़ है। यह पकने तक हरी रहती है। यह 80 से 90 दिन में (50 प्रतिशत फूल आने पर) हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच जे 513: यह किस्म कड़वी के लिए भी बहुत उपयोगी है। इसके पत्ते चौड़े और लम्बे हैं। यह लम्बी, बिना मिठास वाली तथा एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है जिसकी हरे चारे की पैदावार 190-210 क्विं./एकड़ है। यह पकने तक हरी रहती है व पत्ते के रोगों व कीड़ों की प्रतिरोधी है। यह 80 से 85 दिन में (50 प्रतिशत फूल आने पर) हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 308: यह लम्बी, रसदार, पत्तेदार एवं एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है। इसके हरे चारे की औसत पैदावार 215 क्विं./एकड़ है। यह 85 से 95 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 260: यह लम्बी, बिना मिठास वाली तथा एक-कटाई के लिए उपयुक्त किस्म है जिसे सूखे चारे के लिए अधिक उपयोग में लाया जाता है। इसके पत्ते लम्बे व चौड़े होते हैं और यह पत्ता रोग रोधी किस्म है। इस किस्म की हरे चारे की औसत पैदावार 180 से 200 क्विं./एकड़ है। यह 65 से 70 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एच सी 171: यह एक मध्यम ऊंचाई वाली मीठी, रसदार, चौड़े पत्ते तथा एक-कटाई के लिए उपयुक्त वाली किस्म है। यह लाल पत्ती रोग रोधी है। इस किस्म से हरे चारे की औसत पैदावार 180-185 क्विं./एकड़ है।

एच सी 136: यह किस्म लम्बी, मीठी, रसदार तथा दो कटाइयां देने में सक्षम है और देर से पकती है। इसके पत्ते अधिक लम्बे व चौडे होते हैं जो पकने तक हरे रहते हैं। हरे चारे की औसत पैदावार 200-220 क्विं./एकड़ है। यह 90 से 95 दिन में हरे चारे के लिए तैयार हो जाती है।

एस एस जी 59-3: यह हरियाणा के सिंचित व मैदानी क्षेत्रों के लिए सिफारिश की गई है। यह मीठी व अच्छे गुणों वाली किस्म है जिससे लम्बे समय तक हरा चारा मिलता रहता है, विशेषकर जब दूसरे चारों की कमी रहती है। यह किस्म मई से नवम्बर तक 3-5 कटाइयों में 300 क्विं./एकड हरे चारे की पैदावार देती है।

भूमि व खेत की तैयारी

ज्वार की खेती वैसे तो सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है परन्तु अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए बढ़िया है। खरपतवार नष्ट करने तथा फसल की अच्छी पैदावार के लिए खेत को खूब अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। सिंचित इलाकों में मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई और उसके बाद भी देसी हल से 2 जुताइयां (एक दूसरे के आर-पार) बिजाई से पहले अवश्य करनी चाहिएं।

बिजाई का समय

ज्वार की गर्मी की फसल 20 मार्च से 10 अप्रैल तक बो देनी चाहिए। यदि सिंचाई व खेत उपलब्ध न हो तो बिजाई मई के पहले सप्ताह तक की जा सकती है। बहु-कटाई वाली किस्में जैसे कि एस एस जी 59-3 किस्म इस मौसम में लगाने से अधिक गर्मी वाले समय में भी पशुओं को हरा चारा उपलब्ध हो जाता है और यह किस्म अन्य किस्मों की तुलना में हरा चारा लम्बे समय तक उपलब्ध कराती है। खरीफ की फसल की बिजाई का सही समय 25 जून से 10 जुलाई है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई उपलब्ध नहीं है वहां खरीफ की फसल मानसून में पहला मौका मिलते ही बो देनी चाहिए।

बीज की मात्रा और बिजाई का तरीका

ज्वार के लिए 20-24 किलोग्राम व सुडान घास के लिए 12 से 14 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से 25 सैं.मी. के फासले पर कतारों में ड्रिल या पोरे की मदद से बीजें। बीज को बिखेरकर न बोएं। यदि किसी कारणवश छिड़काव विधि द्वारा बुवाई करनी पड़े तो बीज की मात्रा में 15-20 प्रतिशत की वृद्धि आवश्यक है।

उर्वरक प्रबन्धन

कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई के समय 20 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड दें। सारी खाद बिजाई से पहले कतारों में ड्रिल करें। अधिक वर्षा वाले या सिंचित इलाकों में 20 किलोग्राम नाइट्रोजन बिजाई के समय तथा 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के एक महीने बाद भी डालें। सुडान घास के लिए हर कटाई के बाद 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ देनी चाहिए। जिन खेतों में फास्फोरस की कमी हो वहां 6 किलोग्राम शुद्ध फास्फोरस प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई से पहले डालें।

खरपतवार प्रबन्धन

ज्वार उगने के 15-20 दिन बाद या पहली सिंचाई के बाद - बत्तर आने पर एक बार निराई-गुड़ाई करें, दूसरी गुड़ाई बरसात में जब खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाए तब करें। इससे खरपतवार नियन्त्रण में रहते हैं तथा भूमि में नमी भी बनी रहती है। ज्वार में खरपतवारों की रोकथाम के लिए बिजाई के 7-15 दिन के अन्दर-अन्दर 200 ग्राम एट्राज़ीन (50 प्रतिशत घु.पा.) प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें ऐसा करके खरपतवारों को काफी हद तक रोका जा सकता है।

सिंचाई प्रबन्धन

मार्च-अप्रैल में बीजी गई फसल में पहली सिंचाई बिजाई के 15-20 दिन बाद तथा आगे की सिंचाइयां 20-25 दिन के अन्तर पर करें। इस प्रकार लगभग 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। वर्षा ऋतु में बोई गई फसल में आमतौर पर सिंचाई की आवक्यकता नहीं होती। यदि बरसात का अन्तराल बढ़ जाए तो आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें। अधिक कटाई वाली फसल में हर कटाई के बाद सिंचाई अवश्य करें इससे फुटाव जल्दी व अधिक होता है।

हानिकारक कीट प्रबन्धन

। चारा ज्वार की फसल में मुख्यत: गोभछेदक मक्खी, तना छेदक एवं टिड्डे का प्रकोप अधिक होता है। गोभ छेदक मक्खी फसल को मार्च से मध्य मई और मध्य जुलाई से सितम्बर तक हानि पहुंचाती है। इसलिए फसल को मध्य मई से लेकर जून तक बो दें। बीज की 10 प्रतिशत अधिक मात्रा प्रयोग में लाएं।

। तनाछेदक का आक्रमण फसल उगने के 15 दिन बाद आरम्भ हो जाता है। छोटी फसल में पौधों की गोभ सूख जाती है। बड़े पौधों में इसकी सूंडियां तने में सुराख बनाकर फसल की पैदावार व गुणवत्ता को काफी कम कर देती हैं। इन कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 ग्राम कार्बेरिल 50 प्रतिशत घु.पा. को 200 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ फसल पर बिजाई के 20 दिन के बाद 10-12 दिन के अन्तर पर दो छिड़काव करें। इसका चारा पशुओं को छिड़काव के 21 दिन तक न खिलाएं।

। टिड्डे, ज्वार की फसल को छोटी अवस्था से लेकर पूरे वृद्धिकाल तक हानि पहुंचाते हैं। शिशु और प्रौढ़ पत्तों को किनारों से खाते हैं जिससे भारी प्रकोप की अवस्था में केवल पत्तों की मध्य शिराएं और कभी-कभी तो केवल पतला तना ही रह जाता है। फसल छोटी रह जाती है। फसल पर इन कीड़ों की संख्या बहुत होती है जिससे इनके मलमूत्र की बहुतायत के कारण फफूंद आ जाती है और प्रकोपित फसल चारे के योग्य नहीं रहती। इस कीड़े की रोकथाम के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का छिड़काव 250 लीटर पानी में प्रति एकड़ करें। इसका चारा पशुओं को छिड़काव के 21 दिन तक न खिलाएं।

कटाई प्रबन्धन

एक-कटाई वाली किस्मों की कटाई फूल आने पर करें। बहु-कटाई वाली चारा फसल में पहली कटाई बुवाई के 55-60 दिन बाद करें और तत्पश्चात प्रत्येक कटाई 40-45 दिन के अन्तराल पर करें। बहु कटाई वाली किस्मों की कटाई ज़मीन से 10-12 सैं.मी. ऊपर से करें ताकि फुटाव जल्दी हो।

विषैले तत्वों का प्रबन्धन

धूरिन (हाइड्रोसाइनिक अम्ल)-ज्वार में धूरिन की अधिक सांद्रता पशुओं के लिए हानिकारक होती है। धूरिन अगर 200 माईक्रोग्राम/ग्राम से अधिक हो तो यह पशुओं के लिए घातक होता है। 30 दिन की फसल में इसकी सांद्रता अधिक होती है। इसलिए फसल को बिजाई के 50 से 60 दिन बाद ही काटना चाहिए, अगर बहुत आवश्यक हो तो एक सिंचाई करने के बाद ही कटाई करें और अन्य चारे के साथ उचित अनुपात में मिलाकर पशुओं को खिलाएं। अधिक सूखा एवं अधिक नत्रजन उरर्वकों का प्रयोग भी धूरिन की सांद्रता को बढ़ाता है। इसलिए इसकी विषाक्तता को कम करने और पशुओं को इसके दुष्प्रभाव से बचाने के लिए ज्वार के हरे चारे को सूखे चारे के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाएं।

उत्तम बीज : महत्व तथा विशेषताएं

- सुषमा शर्मा, हेमेंद्र एवं वी. एस. मोर
बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सामान्य बीज की बिजाई के साथ कितनी भी खाद, सिंचाई, उर्वरक आदि क्यों न दी जाए पर उत्तम बीज के मुकाबले पैदावार कम ही रहेगी। उत्तम गुणों वाले शुद्ध बीज के उपयोग से निम्न गुणवत्ता वाले बीजों की तुलना में 8 से 25 प्रतिशत अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। उत्तम बीज के इन्हीं महत्वों को ध्यान में रखते हुए इन्हें सम्पूर्ण बीज कार्यक्रम की धुरी में रखा गया है। अधिक उत्पादन क्षमता, कीट एवं रोग प्रतिरोधकता, वातावरणीय प्रतिकूलताओं के प्रति सहनशक्ति, गुणवत्ता और दक्षता एवं उपयुक्त मात्रा में नमी एवं अंकुरण क्षमता आदि उन्नत बीजों की विशेषताएं होती हैं। उचित शब्दों में उन्नत और शुद्ध बीज की परिभाषा में बीज की भौतिक एवं अनुवांशिक शुद्धता तथा अंकुरण क्षमता का उचित मापदंड पर खरा उतरना आवश्यक है। विभिन्न फसलों के लिए उचित मानक स्तर या मापदंड निर्धारित किए गए हैं।

उत्तम बीज के गुण

अंकुरण क्षमता : अंकुरण क्षमता बीज का मूल्यांकन करने में सबसे अहम है। बीज मात्रा निर्धारण में भी यह अहम् भूमिका निभाता है। बीज परीक्षण प्रयोगशाला द्वारा फसल की अंकुरण क्षमता को प्रतिशत में मापा जाता है और सभी फसलों के लिए पूर्व निर्धारित स्तर पर खरा उतरना आवश्यक है और बुवाई के लिए अधिक अंकुरण प्रतिशत वाले बीज को चुना जाता है।

भौतिक शुद्धता : बीज अक्रिय मिश्रण मुक्त होना चाहिए। बीजों में किसी अन्य फसल या खरपतवारों के बीजों का पाया जाना बीज की भौतिक अशुद्धता को दर्शाता है। कंकड़, पत्थर, धूल, मिट्टी, भूसा, डंठल आदि से मुक्त बीज ही भौतिक रूप से शुद्ध होता है। कई अन्य फसलें जिनके बीजों का रंग व आकार प्रकार एक तरह के होते हैं उन्हें पहचानना कठिन कार्य है।

जीवन क्षमता : बीज के अंदर उसका भ्रूण ही एकमात्र जीवित भाग है और भ्रूण अगर क्षतिग्रस्त हो जाए तो बीज का जीवन समाप्त हो जाता है। बीज का सही भंडारण उसे जीवित रखता है लेकिन वहीं अगर कीट, नमी, ताप व अन्य भंडारण दोषों पर ध्यान न दिया जाए तो बीज की जीवन क्षमता समाप्त हो जाती है। बीज की आयु व परिपक्वता का ज्ञान भी बहुत आवश्यक है। चमकीले, साफ तथा भरे हुए बीज को परिपक्व बीज की परिभाषा दी जाती है। बीजों में चमक समय के साथ कम हो जाती है और परिपक्वता में कमी होने के कारण अंकुरण व जीवन में भी कमी आ जाती है।

बीज स्वास्थ्य : हर जीव के लिए स्वास्थ्य का महत्व बहुत बड़ा है। स्वास्थ्य से हमारा तात्पर्य रोग मुक्त जीवन से होता है। बीज रोगों के रोगाणु, बीजों पर आक्रमण करके उन्हें बुवाई योग्य नहीं छोड़ते और भंडारण समय में वे बीज की जीवन शक्ति नष्ट कर देते हैं। बीजों को रासायनिक एवं भौतिक विधियों द्वारा उपचारित करके इन्हें रोगाणु मुक्त किया जाता है।

बीज प्रसुप्ति: कुछ फसलों के बीज प्रसुप्तावस्था में रहते हैं। यह वह अवस्था है जब बीज को आवश्यक और अनुकूल परिस्थितियां प्रदान करने पर भी वह अंकुरित नहीं हो पाता। आलू, खीरा, टमाटर, बैंगन आदि ऐसी फसलों के उदाहरण हैं। ऐसे बीजों को उपचार के बाद ही खेत में बोना चाहिए वरना उनका अंकुरण नहीं हो पाता तथा किसान को नुकसान उठाना पड़ता है। प्रसुप्ति तोड़ने के लिए अनेक उपचार जैसे तापमान, प्रकाश, रसायन एवं भौतिक तत्वों का इस्तेमाल किया जा सकता है। अधिकतर फसलों में यह समस्या भंडारण के कुछ समय बाद स्वत: ही दूर हो जाती है।

बेर की उन्नत बागवानी

- रणबीर सैनी[1], सुरेन्द्र सिंह[2] एवं मुकेश कुमार
क्षेत्रीय अनुसन्धान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बेर रहमनेसी कुल का भारतीय मूल का फलवृक्ष है। एक मूसला जड़धारी पौधा होने के कारण अत्यधिक सूखा सहनशील है। यह ज़मीन की गहरी परतों से पानी लेने में सक्षम है। इसके अतिरिक्त इसके पत्तों में क्यूटीकल परत मोटी होती है जिसके फलस्वरूप पत्तों से वाष्पोर्त्जन बहुत कम होता है। यही कारण है कि यह शुष्क क्षेत्रीय बागवानी के लिए उत्तम फलवृक्ष हैं। हरियाणा में इनकी बागवानी मुख्यत: झज्जर, रोहतक, जीन्द, रेवाड़ी, भिवानी, महेन्द्रगढ़, गुरुग्राम, नूंह, हिसार व फतेहाबाद में की जाती है। अधिक उत्पादन व सर्वोत्तम गुणवत्ता के लिए निम्नलिखित सस्य क्रियाएं अपनानी चाहिएं :

किस्में

पकने के समय के अनुसार बेर की किस्मों को तीन वर्गों में बाटा गया है जो निम्न हैं:

क. अगेती किस्में (फरवरी में पकने वाली) : गोला, सेब, सन्धूरा नारनौल

ख. मध्य मौसम में पकने वाली (फरवरी अन्त से मार्च के तृतीय सप्ताह तक पकने वाली) : कैथली, मुड़िया मुरहारा, बनारसी कड़ाका, छुहारा

ग. पछेती किस्में : उमरान, काठाफल, इलायची

भूमि का चुनाव

बेर की बागवानी के लिए अनेक प्रकार की भूमि जैसे रेतीली, दोमट, चिकनी, कुछ हद तक लवणीय आदि उपयुक्त है। परन्तु अधिक पैदावार व उत्तम गुणवत्ता के लिए अच्छी जल निकासी वाली दोमट ही मिट्टी उत्तम है। भूमिगत जल स्तर तीन मीटर से ऊपर न हो। खारी अंग 8.7 (9.4 तक सहनशील) हो। लवण सहनशीलता स्तर 11.3 मि. म्होज/सैं.मी. तक है।

फासला

बेर में पौधे से पौधा व पंक्ति से पंक्ति 8 मीटर दूर रखी जाती है। बारानी बागवानी की अवस्था में पौधों के बीच दूरी बढ़ा देनी चाहिए। इस दूरी पर प्रति एकड़ 72 पौधे लगेंगे।

गड्ढे तैयार करना व पौधारोपण

इसके बाद जून के प्रथम सप्ताह या दिसम्बर के अन्त में 3 फुट लम्बे, चौड़े व गहरे गड्ढे खोदें। खोदते समय गड्ढे की ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ व नीचे की आधी दूसरी ओर डालें। 15-20 दिन बाद ऊपर की आधी मिट्टी में बराबर मात्रा में गली-सड़ी देसी खाद, एक कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 50 ग्राम लिण्डेन पाऊडर (2 प्रतिशत) मिलाकर गड्ढों को भर दें व बाकी बची मिट्टी भी भर दें। एक अच्छी वर्षा की प्रतीक्षा करें या गड्ढों की सिंचाई करें और मिट्टी बैठ जाने के बाद पौधारोपण करें।

नये पौधों की आरम्भिक देखभाल

पौधारोपण के तुरन्त बाद सभी पौधों को बाँस अथवा लकड़ी की सोटी/छड़ी से सहारा देना चाहिए।

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, मण्डकौला।
[2]ए.डी.टी., चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

सिंचाई

पौधों को आवश्यकतानुसार सिंचाई दें। अधिक गर्मी व सर्दी के समय जल्दी-जल्दी सिंचाई दें। चिकनी मिट्टी की तुलना में रेतीली मिट्टी में पानी कहीं अधिक जल्दी-जल्दी देना पड़ता है। सिंचाई के पानी के साथ 10-20 मिलीमीटर क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 10 लीटर पानी में घोलकर प्रति पौधा 30-45 दिन में एक बार अवश्य डालें।

निराई-गुड़ाई

फलित बागों में वर्ष में तीन-चार बार थावलों में निराई-गुड़ाई करें व बीच की भूमि की ट्रैक्टर अथवा पॉवर टिल्लर से जुताई करें विशेषकर आरम्भ के वर्षों में।

सिधाई एवं काट-छांट

प्रथम दो-तीन वर्षों में ज़मीन से 60-75 सैं.मी. ऊंचाई तक मुख्य तने से कोई फुटाव नहीं निकलने दें। इसी तरह मूलवृन्त से निकलने वाले सभी फुटाव समय-समय पर निकालते रहें। करीब 2-2½ फुट बढ़ने के बाद चारों दिशाओं में नई शाखाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए ताकि पौधे का पक्का ढांचा तैयार हो सके।

बेर में नियमित अच्छी गुणवत्ता एवं भरपूर उत्पादन के लिए प्रति वर्ष सुप्तावस्था में काट-छांट अनिवार्य है। इसके लिए 1-30 मई के बीच चालू वर्ष की बढ़वार को छः द्वितीय शाखाओं के बाद काट देना चाहिए।

पौध प्रर्वधन: टी-बडिंग द्वारा

खाद एवं उर्वरक

खाद व उर्वरक की मात्रा निम्न तालिका अनुसार देनी चाहिए।

पौधे की आयु (वर्ष)	देसी खाद	यूरिया	सिंगल सुपर फास्फेट
	कि.ग्रा./प्रति पौधा/प्रतिवर्ष		
1	10	0.2	0.3
2	15	0.4	0.6
3	20	0.6	0.9
4	25	0.8	1.2
5	30	1.0	1.5
6	40	1.2	2.0
7 एवं अधिक	50	1.25	2.5

सारी देसी खाद व सिंगल सुपर फास्फेट तथा आधी यूरिया प्रथम वर्षा के साथ ही जून-जुलाई में डालनी चाहिए। यूरिया की शेष मात्रा नवम्बर में जब बेर मटर के दाने समान हों, तब डालें। खाद व उर्वरक मुख्य तने से 2-3 फुट दूर डालें। पौधों में खाद डालने के बाद तुरन्त सिंचाई देनी चाहिए।

सिंचाई

बेर के फलित पौधों को वर्ष भर में तीन से चार सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियन्त्रण

बेर के फलित बागों में वर्ष भर में तीन बार निराई-गुड़ाई अनिवार्य है। पहली जून-जुलाई में खाद व उर्वरक डालते समय, दूसरी अगस्त में व तीसरी वर्षा ऋतु के उपरान्त सितम्बर में।

फल गिरने व फटने की समस्या एवं रोकथाम

फल गिरने व फटने के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे-पोषक तत्वों की कमी, कीट व बीमारियों का प्रकोप, काट-छांट न करना, फूल-फल आने के समय सिंचाई करना, ज़मीन में नमी की कमी होना आदि। जब बेर गिरने की समस्या दिखाई दे तो 1.5 प्रतिशत यूरिया (15 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी) व 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट (5 ग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें। फल फटने की समस्या पर नियन्त्रण हेतु पौधों को प्रचुर मात्रा में देसी खाद दें। लम्बे सूखे अन्तराल के बाद गहरी सिंचाई न करें। समस्या दिखाई देने पर 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम बोरैक्स प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

आय

बेर की बागवानी से प्रति एकड़ 40000-75000 रुपये तक शुद्ध आय ली जा सकती है।

कीट, बीमारियां एवं रोकथाम

यद्यपि बेर की फल-मक्खी तथा सफेद चूर्णी रोग ही सबसे अधिक हानिकारक हैं तथापि अन्य कीट जैसे दीमक, लाख का कीड़ा, छाल खाने वाली सूण्डी तथा बीमारियां जैसे रतुआ, क्लैडोस्पोरियम लीफ स्पॉट, आल्टरनेरिया हानि पहुँचा सकते हैं।

क. कीट

1. फल-मक्खी : यह घरेलू मक्खी जैसी ही होती है। इसकी मादा मक्खी फलों के छिलके के नीचे अण्डे देती है। प्रभावित फल टेढ़े-मेढ़े होकर काने हो जाते हैं और मण्डीकरण योग्य नहीं रहते। साधारण फलों की तुलना में ऐसे फल पीले होकर गिर जाते हैं।

नियन्त्रण एवं सावधानियां

1. नवम्बर माह में जब 75-80 प्रतिशत फल बन चुका हो और बेर मटर के दाने समान हो जाएं तो पेड़ों पर 500 मि.ली. डायमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें व आवश्यकता पड़ने पर 15 दिन बाद दोहराएं। जनवरी मास में (यदि प्रकोप हो) 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई. सी व 5 किलो ग्राम गुड़ को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें।
2. मक्खी ग्रस्त फलों को प्रतिदिन इकट्ठा करें व ज़मीन में 2 फुट गहरा दबा दें या भेड़-बकरियों को खिला दें।
3. मई-जून व दिसम्बर-जनवरी में बाग में गहरी गुड़ाई या जुताई करें।

2. दीमक : जड़, छाल व तनों के क्षतिग्रस्त होने के फलस्वरूप पेड़ सूखकर मर जाते हैं। पौधारोपण के बाद 2-3 साल तक 30-45 दिन में एक बार आवश्यकतानुसार 10-20 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. प्रति पौधा सिंचाई के साथ डालें।

3. सफेद चूर्णी रोग : इसे पाऊडरी मिल्ड्यू के नाम से भी जाना जाता है। इस का प्रकोप पत्ते व फल दानों पर होता है परन्तु पत्तों पर प्रकोप कभी-कभी ही देखा जाता है। प्रकोपित फल अथवा पत्तों पर सफेद पाऊडर-सा जमा हो जाता है। फलों की सतह खुरदरी व भूरे-काले रंग की हो जाती है। प्रभावित फल या तो गिर जाते हैं अन्यथा मण्डीकरण के लायक नहीं रहते और बागवानों को भारी आर्थिक हानि होती है।

नियन्त्रण

1 ग्राम केराथेन या 2 ग्राम सल्फैक्स प्रति लीटर पानी के हिसाब से प्रथम छिड़काव बेर मटर के दाने समान होने पर करें। आवश्यकता अनुसार एक-दो छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर और करें।

गिलोय की खेती

- **राजेश कुमार आर्य एवं आई. एस. यादव**
आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गिलोय एक बहुवर्षीय उपयोगी लता है। इसका वनस्पति कुल मेनीस्परमेसी है। यह भारत के विभिन्न जंगलों में प्राकृतिक रूप में पाई जाती है। बाज़ार में यह गुडुची या गिलोय के नाम से जानी जाती है। इसे गुरबेल, अमृता, मधुपर्णी नामों से भी जानते हैं। जो बेल नीम वृक्ष पर बढ़ती है उसे नीम गिलोय कहते हैं। इस लता की विविध उपयोगिताओं को देखते हुए इसकी खेती न केवल व्यावसायिक रूप से अति लाभकारी पाई गई है अपितु औषधीय रूप से भी बहुत लाभकारी है। इसके वृक्ष की छाल भूरी अथवा पीलापन लिए सफेद रंग तथा पत्ते चौड़े आगे से नुकीले होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में छोटे-छोटे फूल लगते हैं। फल शीत ऋतु में आता है। इसकी पत्तियाँ व शाखाएँ औषधि के रूप में काम में आती हैं। इसे सजावटी एवं सुन्दर बेल के रूप में बागों में भी लगाते हैं। यह 3000 मीटर ऊँचाई तक प्राकृतिक रूप से मिलती है।

औषधीय उपयोग: इसकी जड़ तथा पत्तियों का विभिन्न औषधियों के निर्माण में उपयोग किया जाता है।

1. इसकी जड़ वमनकारी होती है। इसका क्वाथ सांप के विष को दूर करता है।
2. सूखे फल के पाऊडर को घी या शहद के साथ मिलाकर एक टॉनिक का काम करता है। यह पीलिया व गठिया रोग में भी लाभ देता है।
3. इसकी पत्तियों में प्रोटीन की मात्रा काफी होती है। फास्फोरस व कैल्शियम भी विद्यमान है। इसके पत्तों का रस गठिया रोग में लाभदायक होता है।
4. गिलोय, सौंठ तथा वृहतपंचमूल क्वाथ प्रसूति ज्वर को ठीक करता है।
5. गिलोय, रस तथा कूष्माण्ड रस मिश्री के साथ लेने से अम्लपित्त में लाभ होता है।
6. गिलोय तथा सतावरी का क्वाथ पीने से श्वेतप्रदर रोग में लाभ होता है।
7. गिलोय तथा ब्राह्मी लेने से दिल की धड़कन नियंत्रित होती है।
8. गिलोय ब्राह्मी तथा शंखपुष्पी चूर्ण को आंवले के साथ लेने से रक्त चाप ठीक रहता है।

भूमि तथा जलवायु: इसकी खेती दोमट मिट्टी पर सफलता पूर्वक की जा सकती है। यह रेतीली, बंजर व पथरीली भूमि में भी उग आती है। इसके लिए पानी का निकास अच्छा होना चाहिए। क्षारीय, अम्लीय तथा दलदल वाली भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। ज़मीन का पी. एच. 6.5 से 7.5 तक होना चाहिए। इसके लिए सामान्य वर्षा होनी चाहिए। अधिक ठण्ड व गर्म जलवायु पौधे की बढ़वार पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

खेत की तैयारी: एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से खेत की जुताई करनी चाहिए। इसके बाद 2-3 जुताइयां ट्रैक्टर से करनी चाहिएं। खेत समतल व ढेले रहित होना चाहिए।

खाद: 4-6 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ पर्याप्त रहती है।

बीज की मात्रा: इसकी खेती कलम द्वारा की जाती है। लगभग 6-7 इंच लंबी 10,000-12,000 कलमें प्रति एकड़ में काफी होती है।

कलम लगाने की विधि: कलमों को नर्सरी में मई जून में लगाते हैं तथा 4-6 सप्ताह में जड़ें निकल आती हैं। लगाने से पहले कलमों को रूटेक्स नामक हार्मोन से उपचारित कर लेना चाहिए। गिलोय की बेल दक्षिणावृती कुण्डल द्वारा पेड़ पर चढ़ती है। इसके लिए नीम का पेड़ अति उत्तम माना जाता है। इसके अलावा जटरोफा व संहजना भी लगाया जा सकता है। इसको खेत में लगा दिया जाता है। एक वर्ष के बाद इन पौधों के पास गिलोय की कलम लगाई जाती है। कलम की मोटाई उंगली की मोटाई जितनी होनी चाहिए। नीम, जटरोफा, सहजन के वृक्षों के पास गिलोय की कलम फरवरी-मार्च या जुलाई-अगस्त में लगाते हैं।

सिंचाई: कलम लगाने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बाद में 15-20 दिन के अंतर पर सिंचाई लगाएँ। जब कलम से लता चल जाए फिर आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

पौध संरक्षण: अब तक गिलोय पर कीड़े व बीमारियों का प्रकोप नहीं पाया गया है। अत: किसी विशेष दवाई की आवश्यकता नहीं है।

कटाई: इसकी पत्तियां नवम्बर-दिसम्बर में झड़नी शुरू हो जाती हैं। इसकी बेल सरलता से सूखती नहीं है। बेल की कटाई भूमि की सतह से 1 फुट ऊपर अप्रैल-मई महीने में करनी चाहिए। जल्दी सुखाने के लिए बीच में से चीर कर छोटे-छोटे टुकड़े कर तेज़ धूप में सुखाना चाहिए। सुखाकर बोरियों में भंडारण कर लें। गिलोय जितनी पुरानी होती है उसका उतना ही महत्व होता है। इसलिए 4-5 साल पुरानी बेल को ही काटना चाहिए।

पैदावार: पाँच वर्ष बाद एक पौधे से लगभग 10 किलो ताज़ी बेल का उत्पादन मिलता है। अत: 100 से 120 क्विं/एकड़ हरी गिलोय मिलती है। शुष्क बेल की पैदावार लगभग 8-10 क्विं प्रति एकड़ हो जाती है और मण्डी में इसका मूल्य लगभग 10-15 रु. प्रति कि.ग्रा. है। इसके अलावा सहारा देने वाले पौधों से भी अतिरिक्त आय होती है।

आय: कुल मिलाकर 5 वर्ष बाद एक एकड़ से लगभग 1 लाख रुपए तक की आमदनी हो सकती है।

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

- सह-निदेशक (प्रकाशन)

जैविक उर्वरकः आधुनिक कृषि प्रणाली की व्यापक आवश्यकता

- **कविता रानी, लीला वती एवं कविता**[1]
सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नित्य नवीन आविष्कारों ने मनुष्य के जीवन को सुगम एवं सरल बनाने में विशेष योगदान निभाया है। यद्यपि कृषि रसायनों में निरंतर उन्नति ने वर्तमान भारतीय कृषि उत्पादन को नए आयाम दिए हैं किन्तु उनके अत्यधिक प्रयोग से उत्पन्न दुष्प्रभावों को भी नकारा नहीं जा सकता। रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग के बहुसंख्य दुष्प्रभाव हैं, जैसे पर्यावरण प्रदूषण, जिसमें मुख्य रूप से मृदा प्रदूषण, वायु प्रदूषण, और जल प्रदूषण हैं। किसानों की रासायनिक कीटनाशकों पर निरंतर निर्भरता ने मृदा के स्वास्थ्य पर प्रचंड प्रभाव डाले हैं। मृदा स्वास्थ्य से समझौता करना भोजन के पोषक मान से खिलवाड़ करने जैसा है। रासायनिक कीटनाशक भोजन के पोषक मान को ही कम नहीं करते अपितु इसको दूषित भी कर देते हैं। निरंतर नए शोधों ने यह सिद्ध कर दिया है कि रासायनिक कीटनाशकों के अवशेष भोजन में पाए जाते हैं जिसके माध्यम से यह हमारे शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः जैविक खेती को एक अच्छे विकल्प के रूप में तलाशा जा सकता है जो मृदा एवं मनुष्य दोनों की सेहत के लिए महत्वपूर्ण है। जैविक खेती का परम उद्देश्य स्थायी कृषि की कार्यप्रणाली विकसित करना होता है ताकि वातावरण संरक्षण, मृदा अवकर्माण, भूरक्षण, मृदा की जैविक विविधता के संरक्षण जैसी समस्याओं पर संज्ञान लेते हुए इनका यथासंभव समाधान विकसित करना है।

सूक्ष्मजीवों (जीवाणु, कवक और शैवाल) की विभिन्न प्रजातियां प्राकृतिक उत्पादों को उपलब्ध कराने की अनूठी क्षमता रखते हैं जो खतरनाक रसायनों के स्थान पर कृषि में उपयोग करने के लिए बेहतर विकल्प हैं। इन सूक्ष्मजीवों को ''जैविक उर्वरक'' कहा जाता है जिन्हें नाइट्रोजन फिक्सिंग, फॉस्फोरस की घुलनशीलता और लामबंदी, कार्बनिक सामग्री में वृद्धि, संतुलित सी/एन अनुपात, पोषक अवशोषण में वृद्धि, पौधों के रोगाणुओं के खिलाफ विरोधी गतिविधि और पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले हार्मोन के उत्पादन में उपयोग किया जाता है। जैविक उर्वरक कृषि रसायन के स्थान पर एक बेहतर विकल्प का प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि वे सस्ते और पर्यावरण के अनुकूल होते हैं।

जैविक उर्वरकों को उनकी प्रकृति और कार्य के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में समूहीकृत किया जा सकता है।

ये जैविक उर्वरक पौधों की वृद्धि और फसल उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैविक उर्वरकों के विभिन्न लाभ इस प्रकार हैं:

- पौधों में अजैविक तनाव सहनशीलता।
- पौधों के उत्थान के लिए पोषक उपलब्धता में वृद्धि।
- पौधों के विकास नियामकों का उत्पादन।
- हार्मोन का उत्पादन।
- सिडरोफोर का उत्पादन जो राइजोस्फियर में हानिकारक जीवाणुओं के विकास को रोकते हैं।
- अस्थिर कार्बनिक यौगिकों का उत्पादन जो रोगाणुरोधी होते हैं और पौधों के विकास को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।
- एंजाइमों का उत्पादन जो राइजोस्फियर में रोगजनक जीवाणुओं को मारते हैं।
- फॉस्फेट, सल्फर, लौह और तांबा जैसे अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि।
- राइजोस्फियर में फायदेमंद जीवाणु और कवक जोड़ने में मदद करते हैं।

जैविक उर्वरकों के अच्छे प्रभाव को ध्यान में रखते हुए कृषि में उनके कार्यान्वयन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

समूह	सूक्ष्मजीव
नाइट्रोजन फिक्सिंग सूक्ष्मजीव	
मुक्त जीवी	एजोटोबैक्टर, अनाबेना, नोस्टोक
सहजीवी	राइजोबियम, फ्रैंकिया, अनाबेना अजोले
सहयोगी	एजोस्पाइरिलम
फॉस्फोरस की घुलनशीलता बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव	
जीवाणु	बेसिलस अमाइलोलिक्विफेसिन्स, बेसिलस सरकुलन्स, बेसिलस पोलिमिग्जा, बेसिलस मेगाटिरिअम, बेसिलस पुल्विफेसिन्स, बेसिलस सबटिलीस, सिटरोबैक्टर, स्यूडोमोनास स्ट्रिएटा, राइजोबियम
कवक	एस्परजिलस अवामोरी, एस्परजिलस नाइजर, फ्युजेरिअम , पेनिसिलियम ओग्जेलिकम , पेनिसिलियम इटेलीकम
फॉस्फोरस लामबंदी बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव	
आरबसकुलर माइकोराइजा	अकौलोस्पोरा, गीगास्पोरा, ग्लोमस
एक्टोमाइकोराइजा	एमानिटा, खुमी, लैकेरिया, पिजोलिथस
अरिकोइड माइकोराइजा	पेजिजेलेरेसी
आर्किड माइकोराइजा	राइजोक्टोनिया सोलेनी
पौधों के विकास को बढ़ावा देने वाले सूक्ष्मजीव	
हार्मोन स्रावित करने वाले सूक्ष्मजीव	एसीटोबैक्टर डाइएजोटरोफिकस, एजोस्पाइरिलम ब्रेसिलेन्स, एजोस्पाइरिलम लिपोफेरम, हरबोस्पिरिलम, राइजोबियम
रोगाणुरोधी	स्यूडोमोनास फलोरिसेन्स, एजोस्पाइरिलम, बेसिलस

[1]कृषि अर्थशास्त्र विभाग, चौ चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैव उर्वरक (माईकोराइज़ा) : भूमि की सेहत का वरदान

- **जगदीश प्रसाद एवं दिनेश कुमार**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैव उर्वरक को जीवाणु खाद कहते हैं क्योंकि यह एक जीवित उर्वरक है, जिसमें सूक्ष्म जीव विद्यमान होते हैं। जैव उर्वरक के प्रयोग करने से पौधों को नाइट्रोजन, अमोनिया के रूप में व मिट्टी में पहले से उपस्थित अघुलनशील पोषक तत्व आसानी से घुलनशील अवस्था में परिवर्तित हो कर पौधों या फसलों को उपलब्ध होते हैं। जीवाणु प्राकृतिक अवस्था में पाये जाते हैं व इनके प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति, भूमि का स्वास्थ्य और इसमें पाये जाने वाले जीवों का स्वास्थ्य ठीक रहता है एवं पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरकों के पूरक हैं, परन्तु विकल्प नहीं है। रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से आज हमारी भूमि और वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। अनेक प्रकार के जैव उर्वरकों के साथ माइकोराइज़ा का अपना ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह संतहनी पौधों को जड़ों के साथ कवक के साथ सह-सम्भव संयोजन है, यह फास्फोरस को तेज़ी से बढ़ाने में उपयोगी है, यह फल वाली फसलों की पैदावार के लिए बहुत ही लाभदायक है, इसको बीज उपचार, कंद उपचार, पौध जड़ उपचार और मिट्टी उपचार विधि के द्वारा किसी भी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है।

माइकोराइज़ा किसी कवक तथा वाहिक पादपों की जड़ों के बीच परस्पर सहजीवी सम्बन्ध को कहते हैं, इस प्रकार के सहजीवी सम्बन्ध में कवक, पौधे की जड़ों पर आश्रित होते हैं तथा मृदा जीवन का एक महत्वपूर्ण घटक होते हैं।

माइकोराइज़ा का अर्थ कवक मूल होता है इनका जीवन मृतोपजीवी की भांति होता है, इनकी जड़ों में अनेक कवक पाये जाते हैं जो पादपों में कार्बनिक पदार्थों के अवशोषण में सहायक होते हैं। एक ही पादप मूल जड़ पर कवकों की कई जातियां पाई जाती हैं या फिर एक ही जाति की कवक अनेक पादप जातियों की मूल जड़ों पर पाया जाता है।

माइकोराइज़ा मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है :

1. एक्टोट्रोपिक माइकोराइज़ा : इसमें कवक तन्तु पोषक पौधे की जड़ की सतह पर एक परत बना लेते हैं। कवक तन्तु बाद में पौधे की जड़ की एपीब्लेमा में प्रवेश करके एक जाल बना लेते हैं जो कवक तन्तु जड़ की सतह पर होते हैं वो फिर कार्बनिक पदार्थ युक्त मिट्टी में प्रवेश करके कुछ एन्जाइम्स व एसिड का स्त्रावरण करके अघुनशील कार्बनिक पदार्थों को घुलनशील बना कर अवशोषित कर लेते हैं और पौधों की जड़ों तक पहुंचा देते हैं व पौधे इनका पोषण करते हैं। इस प्रकार के पौधों की जड़ों पर मूल रोम नहीं पाये जाते हैं, जैसे पाइनस (कोनीफरेस) ओक (फगेसी) आदि। कुछ पौधों की जड़ों में पूर्ण मृतोपजीवी माइकोराइज़ा पाया जाता है जैसे कि मोनोट्रोपा तथा सारकोडूस। क्योंकि इन पौधों में क्लोरोफिल का अभाव होता है व सम्पूर्ण पोषण कवक के माध्यम से होता है। इस प्रकार पोषक एवं कवकों का सम्बन्ध बहुत ही लाभकारी होता है, क्योंकि माइकोराइज़ा वाले पादपों में खनिज लवणों को अवशोषित करने की क्षमता में भी वृद्धि हो जाती है।

2. एण्डोट्रोपिक माइकोराइज़ा : इसमें कवक तन्तु पोषक पौधों की जड़ पर परत नहीं बनाते हैं अपितु जड़ की सतह पर फैले रहते हैं। कवक तन्तु जड़ की कार्टेक्स की कोशिकाओं में भीतर तक प्रवेश कर जाते हैं और अन्तराकोशिकीय अवकाशों में वृद्धि करते हैं किन्तु कुछ कवक तन्तु मिट्टी में भी प्रवेश कर जाते हैं। ये कवक तन्तु मृदा से कार्बनिक पदार्थों, खनिजों तथा नाइट्रोजनी पदार्थों का अवशोषण करके पोषक पौधों तक पहुंचाते हैं और कवकों को पोषक पौधे से शर्कराएं तथा पोषक तत्व प्राप्त होते हैं व कवकों से पौधों को कोई हानि भी नहीं होती है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि यदि पोषक पौधों को तथा इनमें मिलने वाले कवकों को अलग-अलग विकसित किया जाये तो दोनों की वृद्धि अत्यधिक धीमी हो जाती है। यह भी देखा गया है कि हरे आर्किड्स के बीज को यदि कवक से उपचारित न किया जाए तो उनका अंकुरण भी नहीं होता है ऐसा भी अनुमान है कि शिशु नवोद्भिद इन कवकों द्वारा अपना पोषण ग्रहण करते हैं किन्तु पौधों की परिपक्वता के बाद इन कवकों की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती।

माइकोराइज़ा गोबर अथवा मल पदार्थों में अघुलनशील कार्बनिक अथवा अकार्बनिक रूपों में कार्बोनिक फास्फोरस जो पौधों को अप्राप्त होता है, प्राय: अकार्बनिक फास्फोरस में बदल जाता है। अधिकतर मूत्र में पोटाश पाया जाता है। अविलेय कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा पोटेशियम के लवण विच्छेदन के बाद घुलनशील अवस्था में बदल जाते हैं, जो पौधों द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं।

माइकोराईज़ा का प्रयोग वानिकी कृषि में किया जाता है। यह भूमि में पाया जाता है और इसको मृदा से पृथक कर लिया जाता है। इसको पौधों की जड़ों के प्रभावी क्षेत्र से अलग किया जाता है इसमें प्राथमिक मोकुलम के रूप में इसके बीजाणु कवक जाल, सवंमित जड़ों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार पृथक किये गये प्रारम्भिक संबधों को संवहनी परपोषी पादप के साथ गमलों में बर्धि किया जा सकता है। गमलों में प्राय सबस्ट्रेट बालू भूमि जिसमें थोड़ी मात्रा में नमी हो को 1:1 w/w में लिया जाता है। हाल ही के वर्षों में कृत्रिम रूप से निर्मित माइकोराइज़ा के प्रयोग ने इसके महत्व को इसकी बहुउद्देशीय भूमिका जैसे कि पौधों में वृद्धि, पर्यावरण प्रतिरोधकता, रोगाणु, हानिकारक जीवों व मिट्टी सम्बन्धी प्रतिरोधकता इत्यादि और अधिक बढ़ा दिया है।

जैव उर्वरक माइकोराइज़ा के लाभ

1. पौधों की पोषक जड़ों की लम्बाई क्षेत्रफल व पोषक तत्वों के अवशोषण को बढ़ाता है। अचलायमान पोषक तत्व जैसे कि फास्फोरस, ज़िंक, कॉपर व चलायमान पोषक तत्व जैसे कि सल्फर, कैल्शियम, पोटाश, लोहा, मैंगनीज़ व नाइट्रोजन तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है।
2. माइकोराइज़ा पौधों की पानी अवशोषित करने की क्षमता को बढ़ाता है।
3. क्षारीय भूमि में पौधों को भली प्रकार वृद्धि करने में मदद करता है।
4. भूमि में उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है।
5. इससे बीज का अंकुरण अच्छा व जल्दी होता है।
6. पौधों की टहनियों में फुटाव जल्दी व अधिक होता है।
7. मिट्टी में ह्यूमस की मात्रा में वृद्धि होती है व मिट्टी की भौतिक व रासायनिक ढांचे में सुधार लाता है।
8. इनके प्रयोग से 15-20 प्रतिशत तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
9. मिट्टी की क्षारीय स्थिति में सुधार होता है

प्रयोग में सावधानियां

1. जैव उर्वरक को हमेशा छायादार स्थान पर रखें।
2. फसल के अनुसार चुनाव करें।
3. दी गई हिदायतों के अनुसार उचित मात्रा में प्रयोग करें।

[1]बागवानी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार

वैज्ञानिक विधि द्वारा – कपास के मुख्य रोगों का उपचार

- **मनमोहन सिंह, अनिल कुमार एवं राजबीर सांगवान**
कपास अनुभाग, आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पत्तों एवं जड़ पर लगने वाले रोग मुख्यत: कपास में लगने वाले रोग हैं। पत्तों पर लगने वाले रोगों में पत्ता मरोड़ रोग मुख्य है। इसके पश्चात् कोणदार धब्बों का जीवाणु रोग भी महत्वपूर्ण है। जड़ में लगने वाले रोगों में जड़ गलन तथा झुलसा रोग मुख्य है। इसके अतिरिक्त टिण्डा गलन जोकि फफूंद, जीवाणु तथा कीड़ों द्वारा उत्पन्न होता है, अधिक बरसात में एक महत्वपूर्ण समस्या का रूप धारण कर लेता है। इसलिए यह अतिआवश्यक है कि इन रोगों की सही पहचान कर उचित रोकथाम की जा सके।

पत्तों के मुख्य रोग व उनकी रोकथाम

पैराविल्ट : यह वर्तमान समय में कपास का मुख्य रोग है। यह समस्या आमतौर पर अगस्त से अक्तूबर माह के बीच आती है। इसका मुख्य कारण लम्बे समय तक सूखा रहने के पश्चात् सिंचाई देना व वर्षा का होना है। रेतीली भूमि में इसका अधिक प्रकोप होता है। इस समस्या के कारण पौधों के पत्ते अचानक मुरझा जाते हैं और पौधे शीघ्र सूखने लगते हैं लेकिन पौधे की जड़ें सामान्य रहती हैं और इसमें कोई रोगाणु संलिप्त नहीं होता। इस समस्या के लक्षण दिखाई देने के 48 घंटों के अन्दर कोबाल्ट-क्लोराइड 2.0 ग्राम/200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

जीवाणु अंगमारी या कोणदार धब्बों का रोग : यह रोग पौधे के सभी भागों पर अपने लक्षण दिखाता है। इसके मुख्य लक्षण हैं : टहनियों पर धब्बे, पत्तों पर कोनेदार धब्बे व टिण्डों पर भी धब्बे पाए जाते हैं। इस रोग के लक्षण पत्तों पर कोणदार जलसिक्त (पानीदार) धब्बों के रूप में दिखते हैं। ये गहरे-भूरे होकर किनारों से लाल या जामुनी रंग के हो जाते हैं व कभी-कभी आपस में मिले हुए होते हैं व तनो पर लम्बे या अण्डाकार काले रंग के धब्बे बनते हैं। प्रकोप की अवस्था में कोणदार धब्बे शिराओं के पास सिमट जाते हैं और इस प्रकार शिराएं काली पड़ जाती हैं जिससे कि पत्ता सिकुड़ जाता है और पीला पड़ कर गिर जाता है।

पत्ता मरोड़ रोग : यह कपास का सबसे मुख्य रोग है। सबसे पहले ऊपर की कोमल पत्तियों पर इसका असर दिखाई पड़ता है, पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ कर कप जैसी आकृति की हो जाती हैं और कहीं-कहीं पर पत्तियों की निचली तरफ नसों पर पत्ती की आकार की बढ़वार भी दिखायी देती है। ऐसे पौधे छोटे रह जाते हैं, इन पर फूल, कली व टिण्डे नहीं लगते, इनकी बढ़वार एकदम रुक जाती है और इसका उपज पर बहुत विपरीत असर पड़ता है। यह रोग एक जैमिनी विषाणु द्वारा होता है। सफेद मक्खी इस रोग को फैलाने में सहायक है। बीज, भूमि या छुआछूत द्वारा यह रोग नहीं फैलता है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में आ सकता है इस रोग से 80-90 प्रतिशत तक फसल में नुकसान हो सकता है यदि यह रोग फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आ जाये तो अधिक नुकसान होता है और फसल की पछेती अवस्था में आये तो पैदावर पर लगभग कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब यह रोग अधिक हो वहां पर देसी कपास बोई जाए क्योंकि देसी कपास में यह रोग नहीं लगता। सफेद मक्खी का पूर्ण रूप से नियन्त्रण रखें। कई प्रकार के खरपतवार भी इस रोग को फैलाने में सहायक हैं। इसलिए खेतों को, आसपास के क्षेत्रों को तथा नालियों आदि को बिल्कुल साफ रखना बहुत आवश्यक है। भिण्डी पर भी यह रोग पाया जाता है। इसलिए जहां पर यह रोग लगता हो वहां पर भिण्डी की काश्त न करें। इस रोग की रोकथाम के लिए कोई फफूंदीनाशक उपयोगी नहीं है इसके बचाव के लिए कुछ सावधानियां रखनी आवश्यक हैं :

- फसल की अगेती बिजाई।
- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग।
- सफेद मक्खी को नियंत्रण में रखना।
- खेत के आसपास खरपतवार को नहीं पनपने देना।

माइरोथिसियम पत्ता छेदक धब्बा रोग : यह रोग *माइरोथिसियम रोडीडम* नामक फफूंद से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण रोगी पत्तों पर लाल बैंगनी झलक लिए हल्के-भूरे रंग की फफूंद की बिन्दियों वाले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। आरम्भ में इन धब्बों का आकार पिन के सिर जैसा होता है। प्रकोप की अवस्था में धब्बे आपस में मिल जाते हैं। प्राय: रोगग्रस्त भाग पत्तों से गिर जाते हैं। इससे पत्तों में छेद हो जाता है। ऐसे ही लक्षण फल (टिण्डे) के नीचे की छोटी पत्ती और कभी-कभी टिण्डों पर दिखाई देते हैं।

एन्थ्रैक्नोज़ : यह बीमारी पौधे के हर भाग पर पौधे की किसी भी अवस्था में आती है। शिशु पौधे पर लाल-लाल धब्बे बनते हैं और सारे तने पर छा जाते हैं जिससे पौधे मर जाते हैं। जलसिक्त, अन्दर धंसे धब्बे बनते हैं जिससे किनारे लाल रंग के होते हैं और बाद में नारंगी रंग का फफूंद बीजाणु इन पर छा जाता है। रोगग्रस्त टिण्डों पर धब्बे अन्दर तक फैल जाते हैं और डोडियों पर गुलाबी पिण्ड दिखाई देते हैं।

ग्रेमिल्ड्यू व दहिया रोग : यह रोग देसी कपास में लगता है जब फसल लगभग पक जाती है और अधिकतर कपास पहले ही चुन ली जाती है। मिल्ड्यू के धब्बे पुराने पत्तों की निचली सतह पर छोटे, अनियमित व सफेद कोनेदार दिखाई पड़ते हैं। रोग ग्रस्त पत्ते जल्दी ही गिर जाते हैं।

कपास के रोगों की सामूहिक रोकथाम

बीज उपचार : पौधों को भूमि से उत्पन्न बहुत से फफूंदों से तथा बीज में रहने वाले जीवाणु से बचाव के लिए फफूंदनाशक दवाइयों से उपचारित करें।

छिड़काव कार्यक्रम : बिजाई के 6 सप्ताह बाद अथवा जून के अन्तिम या जुलाई के पहले सप्ताह में स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (6-8 ग्राम प्रति एकड़) व कॉपर ऑक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अन्तर पर लगभग चार छिड़काव करें।

यदि गन्धक 10 कि.ग्रा./एकड़ धूड़ें या बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें तो देसी कपास के ग्रैमिल्ड्यू रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।

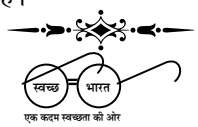

कृषि में पोटाश का महत्त्व

- **सुशीला सिंह, सीमा सांगवान[1] एवं जयन्त सिंधु**
रसायन विज्ञान विभाग, मौलिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि उपज बढ़ाने के लिए उर्वरक एक उपयुक्त रसायन है। बार-बार फसल लेने से मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है इसलिए उर्वरक, पौधों के लिए आवश्यक तत्वों की तत्काल पूर्ति के साधन हैं। पौधों में प्रयुक्त तीन पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटेशियम) में पोटाश बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पोटाश में उपलब्ध पोटेशियम जल में आसानी से घुल जाता है। देश-विदेश में विभिन्न स्थानों में कृषि के क्षेत्र में पोटाश पर किए गए शोध से इसकी निम्न उपयोगिता का पता चला है :

1. पोटाश फसलों की वृद्धि में अन्य पोषक तत्वों की क्षमता बढ़ाता है।
2. यह पौधों की जड़ों में समुचित वृद्धि करके, फसलों को उखड़ने से बचाता है।
3. पोटाश के प्रयोग से फसलों में प्रोटीन निर्माण में वृद्धि होती है।
4. पोटेशियम साठ से अधिक उत्प्रेरकों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।
5. यह फलों में विटामिन सी की मात्रा बढ़ाता है।
6. यह फसलों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व ज़िंक की उपयोग क्षमता बढ़ाता है।
7. यह फसलों को सूखा, पाला की व्याधि से बचाव में मदद करता है।
8. यह फसल उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि के अलावा भण्डारण अवधि में भी वृद्धि लाता है।
9. यह फलों के आकार, रंग व चमक में सुधार लाता है जिससे किसान को बाज़ार में उनका अधिक मूल्य मिलता है।
10. यह सरसों, मूंगफली जैसी फसलों में तेल निर्माण में सहायक है।

पौधों में पोटाश की कमी के प्रमुख लक्षण :

1. खड़ी फसलों में पत्तियों का आकार छोटा होना।
2. पौधों की पत्तियों का किनारों से पीला पड़ना व सूख कर गिरना।
3. रोगों का प्रकोप बढ़ना।
4. पौधों की वृद्धि में कमी होना।
5. पौधों की जड़ों के विकास में कमी और सड़न जैसे लक्षण।
6. सिकुड़े दाने व कम उपज।
7. फलों, सब्जियों की गुणवत्ता में कमी।

फसलों में पोटाश का प्रयोग खेत की तैयारी के समय यानि बुवाई से ठीक पहले करना चाहिए। लेकिन बलुई मिट्टी में उगाई जाने वाली कम अवधि की फसलों में पोटाश की हानि रोकने के लिए किसानों को बुवाई के तीन चार सप्ताह बाद पोटाश का आंशिक प्रयोग करना चाहिए।

बाज़ार में पोटाश की उपलब्धता:

1. पोटाशियम क्लोराईड (KCl) /म्यूरिपेट ऑफ पोटाश (MOP)
2. पोटाशियम नाइट्रेट (KNO_3)
3. पोटाशियम सल्फेट (K_2SO_4)
4. पोटाशियम थायोसल्फेट ($K_2S_2O_3$)

अत: फसलों के उचित उत्पादन के लिए खेती में मिट्टी जाँच के आधार पर पोटाश की अनुशंसित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए जिससे 20-25 प्रतिशत तक अधिक उपज लेकर आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

[1]सूक्ष्मजीवी विज्ञान विभाग, मौलिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय

कृषि में माइकोराइज़ा की भूमिकाएं

- **कविता रानी, कविता[1] एवं कृष्ण यादव[2]**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

माइकोराइज़ा कवक और पौधों की जड़ों के बीच एक सहजीवी सम्बन्ध है। माइकोराइज़ा पौधों की जड़ों के आस-पास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। माइकोराइज़ल सम्बन्ध में, कवक मुख्य पौधे से मूल ऊतकों का उपनिवेश करता है। पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा शर्करा जैसे कार्बनिक अणुओं को बनाते हैं और उन्हें कवक को स्थानांतरित करते हैं। फलस्वरूप, कवक पौधे के लिए आवश्यक पानी और खनिज पोषक तत्वों, जैसे कि फास्फोरस को मृदा से अवशोषित करके पौधे को स्थानांतरित करते हैं। माइकोराइज़ा कुछ ऐसे एन्जाइम्स भी स्रावित करते हैं जो हानिकारक रोगाणुओं को मार कर पौधों को रोगों से बचाते हैं। परिणामस्वरूप, माइकोराइज़ा विभिन्न तरीकों से पौधों के पोषण और मृदा स्वास्थ्य के कायाकल्प में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। माइकोराइज़ा की विभिन्न भूमिकाएं निम्नलिखित हैं:

शर्करा-पानी / खनिज विनिमय : शर्करा को उनके स्रोत (आमतौर पर पत्तियों) से जड़ ऊतक और पौधे के कवक भागीदारों तक स्थानांतरित किया जाता है। बदले में पौधे, पानी और खनिज पोषक तत्वों के लिए माइसेलियम की उच्च अवशोषक क्षमता का लाभ प्राप्त करते हैं। कवक माइसेलियम का सतह क्षेत्र बड़ा होता है एवं ये पौधों की जड़ों के बाल की तुलना में अधिक लंबे और अधिक महीन होते हैं जिसके परिणामस्वरूप ये मृदा की अधिक गहरी परतों में से भी पानी और खनिज लवणों को अवशोषित करने में पौधों की सहायता करते हैं।

रोग, सूखा और लवणता प्रतिरोध में सहायक : माइकोराइज़ा ऐसे एंजाइमों को उत्सर्जित करने के लिए जाना जाता है जो मृदा में पैदा होने वाले जीवों जैसे कि हानिकारक बैक्टीरिया, नेमाटोड आदि के लिए विषाक्त हैं। इसलिए माइकोरिज़ल पौधे अक्सर रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि माइकोरिज़ल संघों का परिणाम पौधों के प्राइमिंग प्रभाव में पड़ता है जो अनिवार्य रूप से प्राथमिक प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के रूप में कार्य करता है। परिणामस्वरूप, माइकोरिज़ल संघों से पौधों में रक्षा प्रतिक्रियाएं मज़बूत होती हैं। इसके अलावा, माइकोराइज़ा में पौधों की तुलना में गहरी जड़ प्रणाली होती है जो गहरी मृदा से पानी को अवशोषित कर सकती है। इसलिए, ये सूखा और लवणता के प्रतिरोध में भी सहायता प्रदान करते हैं।

कीड़ों का विरोध : माइकोराइज़ल पौधे वाष्पशील कार्बनिक यौगिक (वीओसी) उत्सर्जित करते हैं जो कीट के शिकारियों को आकर्षित करते हैं, जिससे यह पौधों को कीट के हमले से बचाने में सहायता करता है। यह माइकोराइज़ल पौधों को समान वाष्पशील कार्बनिक यौगिकों का उत्पादन करने के लिए प्रेरित करता है जो असंक्रमित पौधों को कीट द्वारा लक्षित होने से बचाते हैं।

बंजर मृदा का उपनिवेशीकरण : बंजर मृदा में उगाए जाने वाले पौधे अक्सर पानी और खनिज लवणों के अभाव में नियमित रूप से वृद्धि नहीं कर पाते हैं। कवक के बीजाणु या माइसेलियम गहरी मृदा से पानी और खनिज पोषक तत्वों के अवशोषण में सहायता करते हैं। अत: पोषक तत्वों की कमी वाले पारिस्थितिक तंत्र में माइकोराइज़ा के बीजाणु या माइसेलियम प्रयोग करने से बंजर मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति होती है जो पौधों की नियमित वृद्धि के लिए आवश्यक है।

अत: वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि माइकोराइज़ा पौधों एवं मृदा के पोषण में और पौधों की रोगों से रक्षा करने में सक्षम है इसलिए इसका उपयोग अनाज की फसलों एवं फल-फूल वानिकी में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

[1]कृषि अर्थशास्त्र विभाग, चौ. च. सि. ह. कृ. वि., हिसार।
[2]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ. च. सि. ह. कृ. वि., हिसार।

कपास में खरपतवारों की रोकथाम

- **विरेन्द्र सिंह हुड्डा, मीनाक्षी सांगवान एवं सतबीर पूनिया**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास हरियाणा प्रान्त के दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्रों में उगाई जाने वाली खरीफ की मुख्य नकदी फसल है। कपास की फसल, खासकर बी. टी. कपास, में खूड से खूड व पौधे से पौधे का फासला अधिक होने व शुरू की अवस्था में कपास के पौधों की बढ़वार कम होने के कारण, खरपतवारों को उगने व पनपने का अनुकूल वातावरण मिलता है जिसके कारण कपास की फसल को भारी नुकसान पहुंचता है। यह खरपतवार केवल कपास की बढ़वार को ही नुकसान नहीं पहुंचाते अपितु मिलीबग, सांटा सूंडी व सफेद मक्खी जैसे कीड़ों को आश्रय दे कर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं।

कपास के मुख्य खरपतवार

संकरी पत्ती वाले : मकड़ा, छोटा सांवक, बड़ी सांवक, मधाना, तकड़ी घास, कुत्ता घास, चिड़ियों का दाना आदि।

चौड़ी पत्ती वाले : सांठी (इटसिट), कोंधरा, भाखड़ी, हजारदाना, मकरू बेल, चौलाई, पलपोटण, कागारोटी, जल भंगड़ा, कुकर भंगड़ा, झिरणीया, गंधेली, कनकुआ, चिलमिल आदि।

सदाबहार: हिरणखुरी, डीला (मोथा), मोथा, बरु, कांस, बुई, ढाब आदि।

उपर्युक्त सभी खरपतवारों में सांठी, कोंधरा, डीला (मोथा), मकड़ा व सांवक सबसे अधिक नुकसानदायक खरपतवार हैं। सांठी खरपतवार कपास की फसल में 2-3 बार उगता है और उगने के 15 दिन बाद ही इस पौधे में फूल आ जाते हैं। इसका एक पौधा बढ़कर ज़मीन पर गलीचा-सा बना देता है और एक पौधे से लगभग 20 हज़ार बीज पैदा होते हैं जो कि ज़मीन पर गिरने के तुरन्त बाद भी उगने की क्षमता रखते हैं।

खरपतवारों की रोकथाम

- कपास की फसल में पहली सूखी गुड़ाई बिजाई के 20-25 दिन बाद व दूसरी पहला पानी लगाने के बाद करें।
- जब फसल 50- 60 दिन की हो जाये तो बैलों वाली त्रिफाली से या ट्रैक्टर के पीछे कल्टीवेटर लगाकर हलौड़ दें।
- बिजाई से पहले ट्रैफ्लान 48 ई. सी. (ट्राईफ्लुरालिन) की 800 ग्राम मात्रा या बिजाई के तुरन्त बाद 2-3 दिन के अन्दर स्टॉम्प 30 ई. सी. (पेंडीमेथालिन) की 1.5 लीटर मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से सांठी, कोंधरा, सांवक व मकड़ा खरपतवारों का अच्छा नियन्त्रण हो जाता है।
- कपास में खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु, बिजाई के 40-45 दिन बाद सूखी गोड़ाई के पश्चात् ट्रैफ्लान 48 ई. सी. (ट्राईफ्लुरालिन) की 800 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ या स्टॉम्प 30 ई. सी. (पेंडीमेथालिन) की 1.5 लीटर मात्रा प्रति एकड़ को 250-300 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तत्पश्चात् फसल में सिंचाई लगायें।
- जुलाई-अगस्त महीने में अधिक बरसात होने पर सांठी व सांवक जैसे खरपतवार उगने पर ग्रेमक्सान 0.3 प्रतिशत यानि 3 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से या राउंड अप या ग्लाईसल (ग्लाईफोसेट) 0.5 प्रतिशत यानि 5 मि. ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से नोज़ल पर हुड (प्रोटेक्टर) लगाकर छिड़काव करें।

सावधानियां

- खरपतवारनाशक की सिफारिश की गई मात्रा को पानी की सिफारिश की गई मात्रा (250 से 300 लीटर) में मिला कर शाम के समय पर ही छिड़काव करें। अगर ज़मीन में नमी की थोड़ी कमी हो तो पानी की मात्रा बढ़ा लें।
- ट्रैफ्लान (ट्राईफ्लुरालिन) या स्टॉम्प (पेंडीमेथालिन) के छिड़काव के समय खेत में अच्छी नमी अवश्य हो।
- ट्रैफ्लान (ट्राईफ्लुरालिन) का छिड़काव करने के बाद उसे हैरो, रोटावेटर या कल्टीवेटर चला कर ज़मीन की 2-4 सैं. मी. ऊपर वाली सतह में मिला कर ही कपास की बिजाई करें।
- फसल बड़ी होने पर की जाने वाली खरपतवारनाशक का प्रयोग केवल तब करें जब खेत में नमी हो।

अगर छिड़काव पम्प गेहूं की फसल में 2,4-डी के छिड़काव हेतु प्रयोग किया गया है तो कपास की फसल में छिड़काव करने से पहले पम्प को अच्छी तरह साबुन से धो कर ही प्रयोग में लाएं।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। अन्य छः कीटनाशकों का प्रयोग 31 दिसम्बर, 2020 से बन्द कर दिया जाएगा। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डाय जिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

जून मास के कृषि कार्य

फसलों में

कपास

कपास की फसल को पहला पानी देने से पहले एक गोड़ी अवश्य कर लें। इससे घास-फूस नष्ट हो जाते हैं तथा नमी कुछ और समय तक बनी रहती है। जहां तक संभव हो सिंचाई देर से करें। फसल की छंटाई करके फालतू पौधों को कतारों से निकाल दें। कतारों में पौधों की दूरी कम से कम 30 सैं.मी. व संकर कपास में 60 सैं.मी. रखें। साधारणत: कपास में पहला पानी बिजाई के 45-50 दिन बाद लगायें। कपास में बिजाई के 40-45 दिनों के बाद सूखी गुड़ाई के बाद स्टोम्प 1.25 लीटर प्रति एकड़ के 200-250 लीटर पानी में घोल से उपचार के पश्चात् सिंचाई करने से भी वार्षिक खरपतवारों का उचित नियन्त्रण हो जाता है।

2, 4-डी इस फसल के लिए अत्यंत घातक है। इसलिए ध्यान रखें कि जिन छिड़काव यंत्रों से 2, 4-डी पहले प्रयोग में लाया गया हो उन्हें फफूंदनाशक या कीटनाशक दवाओं के छिड़काव के लिए प्रयोग में न लायें। 2, 4-डी का संपर्क कपास के प्रयोग में लाए जाने वाले उर्वरकों, कीट व फफूंदनाशक दवाओं के साथ भी न होने दें। समस्या हो जाने पर प्रभावित कोंपलों (बन्दरपंजा) को 15 सैं.मी. काट दें तथा फसल में नत्रजन वाली खाद डालें एवं 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करें। कोंपलें काटने तथा यूरिया+ज़िंक सल्फेट के छिड़काव का काम एक सप्ताह बाद दोबारा करें।

चूरड़ा (थ्रिप्स) या माईट का प्रकोप होने पर 250 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कोणदार

लेखक :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अनिल गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
- धर्मबीर दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- तरुण वर्मा, सहायक वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, सहायक वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- लीलावती, प्राध्यापक (सूक्ष्मजीव विज्ञान)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापक (गृह विज्ञान)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धब्बों से बचाव के लिए प्रति एकड़ फसल पर 6 ग्राम स्ट्रैप्टोसाईक्लिन व 600 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड प्रति एकड़ 150 लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। मीलीबग से बचाव के लिए नदी-नालों, सड़कों, मेढ़ों, खालों आदि के किनारों पर उगने वाले खरपतवारों, विशेषकर कांग्रेस घास को जलाकर नष्ट करें।

गन्ना

समय-समय पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें व खरपतवारों को नलाई करके निकाल दें।

गन्ने की फसल में नाइट्रोजन की तीसरी मात्रा इस महीने के अंत तक अवश्य डाल दें। गन्ने के खेत में चौथा पानी लगाने के बाद जब खेत में बत्तर आ जाए तो 45 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ के हिसाब से डालकर ऊपर से गोड़ी कर दें या फिर यही मात्रा खरपतवार रहित खेत में पानी लगाने से पहले डालें और बाद में हल्का पानी लगा दें। मोढ़ी फसल में उपर्युक्त खादों की डेढ़ गुनी मात्रा डालें।

कांगियारी के प्रकोप को रोकने के लिए कांगियारीयुक्त दुमों के ऊपर बोरी चढ़ाकर सावधानी से काट लें और बाद में रोगी पौधों को जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर दें। कांगियारीयुक्त दुमों से भरी बोरी को दस मिनट तक उबलते हुए पानी में रखकर कांगियारी के बीजाणुओं को नष्ट कर दें। इस कार्यक्रम को अभियान के रूप में अपनाएं।

यदि मोढ़ी फसल हो व कनसुआ का प्रकोप हो, तो 2.5 लीटर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ फसल में सिंचाई के साथ दें। काली कीड़ी व पाइरिल्ला का आक्रमण होने पर 400 मि.ली. क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. या 160 मि.ली. डाईक्लोरवास 76 ई.सी. को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। परजीवियों द्वारा पाइरिल्ला की रोकथाम करें। अधिक जानकारी के लिए समीप के कृषि विज्ञान केन्द्र या गन्ना अनुसंधान केन्द्र, जी. टी. रोड, करनाल या गन्ना विभाग के अधिकारियों से मिलें। माईट (अष्टपदी) को मारने के लिए 600 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। कुछ क्षेत्रों में चोटी बेधक (टॉप बोरर) काफी नुकसान पहुंचाता है। इसके लिए जून के अंतिम सप्ताह में 13 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान 3 जी (फ्यूराडान) या 8 किलोग्राम फोरेट (थिमेट) 10-जी दानेदार कीटनाशक प्रति एकड़ डालकर तुरंत सिंचाई कर दें। यह उन्हीं खेतों में डालें जिनमें अप्रैल-मई में 5 प्रतिशत से अधिक पौधे कीटग्रस्त थे या फिर पिछले वर्ष 15 प्रतिशत से अधिक हानि थी। इन कीटनाशकों को यूरिया खाद में मिलाकर भी डाल सकते हैं।

बैसाखी मूंग

मूंग में 70-80 प्रतिशत फलियां पकने पर फसल की कटाई कर लें ताकि सावनी फसलों की बिजाई के लिए खेत खाली हो सकें।

गर्मियों में ली जाने वाली फसलों में हरा तेला, सफेद मक्खी और छोटी-छोटी सूण्डियों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. या 250 मि.ली. ऑक्सीडेमिटोन मिथाईल 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

धान

धान की रोपाई इस माह से शुरू कर दें। इसके लिए खेत के चारों ओर डोलों को मज़बूत करें, खेत में अच्छी तरह पौध पनपने के लिए व पानी बनाए रखने के लिए खेत को अच्छी तरह कद्दू करके एकसार कर लें। यदि खेत में हरी खाद वाली फसल खड़ी हो तो जुताई करके पहले इसे दबा दें व फिर रोपाई करें। पौध को पंक्तियों में रोपें। लंबी किस्मों की रोपाई 20 ×15 सैं.मी. की दूरी पर करें। बौनी किस्मों की व पछेती हालत में लंबी बढने वाली किस्मों की रोपाई 15 सैं.मी. फासले की कतारों में व पौधों में भी 15 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। ध्यान रखें कि पौध 2-3 सैं.मी. से अधिक गहरी न रोपें।

यदि पनीरी गारा किए खेत में लगाई जा रही है तो ऐसे खेतों में लगाने से पहले 20 कि.ग्रा. यूरिया और 60 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट या 22 कि.ग्रा. डी. ए. पी. तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ का छींटा लगाएं। 15 दिन की पनीरी होने पर 25 कि.ग्रा. यूरिया का छींटा देकर ऊपर से हल्का पानी लगाएं।

बौनी मध्यम अवधि वाली किस्में जैसे एच के आर 127, एच के आर 126, एच के आर 120, हरियाणा संकर धान 1, जया व पी आर 106 एवं मध्यम कम अवधि वाली किस्मों जैसे एच के आर 47, आई आर 64, एच के आर 46 में 130 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्युरेट ऑफ पोटाश तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ तथा ज़िंक, फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा लेव बनाते समय शेष दो बार बराबर-बराबर मात्रा में रोपाई के 3 व 6 सप्ताह बाद दें। जबकि बौनी, कम अवधि वाली किस्मों, जैसे एच के आर 48 व गोबिन्द आदि में 105 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट, 40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व ज़िंक सल्फेट की ऊपर बताई गई मात्रा प्रति एकड़ प्रयोग करें। नत्रजन की 1/3 मात्रा तथा फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करें तथा 1/3 नत्रजन की मात्रा बिजाई के 21 दिन बाद व 1/3 मात्रा रोपाई के 42 दिन बाद प्रयोग करें। अगर खेत में ढैंचे की हरी खाद लगाई गई हो तो ऊपर बताई गई नत्रजन की 1/3 मात्रा कम कर दें।

लंबी बासमती धान में 50 कि.ग्रा. यूरिया, 75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ प्रयोग करें जबकि बौनी बासमती में 80 कि.ग्रा. यूरिया, 75 कि.ग्रा./एकड़ सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रयोग करें। फास्फोरस व ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करें। लंबी बासमती में नत्रजन की आधी मात्रा रोपाई के 21 दिन बाद व शेष आधी मात्रा 42 दिन बाद डालें। जबकि बौनी बासमती में 1/3 नत्रजन खेत की तैयारी करते समय, 1/3, 21 दिन बाद व 1/3, 42 दिन बाद प्रयोग करें। ध्यान रहे कि नत्रजन उर्वरक उस समय दें जब खेत में पानी खड़ा न हो।

खरपतवारों की प्रारंभ से ही रासायनिक ढंग से रोकथाम के लिए पौध लगाने के 1-3 दिन बाद खड़े पानी में (4-5 सैं.मी. गहरा) प्रति एकड़ 12 कि.ग्रा. मचैटी दानेदार या बासालीन दानेदार सारे खेत में छिड़क दें या सैटर्न दानेदार केवल 6 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से रोपाई के 2-3 दिन बाद खड़े पानी में एकसार बिखेर दें या ब्यूटाक्लोर 50 ईसी (मचैटी, डेलक्लोर ई.सी., मिलक्लोर, नर्वदाक्लोर, कैप क्लोर, ट्रैप, तीर, हिल्टाक्लोर) या सैटर्न ई.सी. या स्टोम्प 30 ई.सी. में से किसी एक को प्रति एकड़ 1.2 लीटर के हिसाब से या अनिलोफॉस 30 ई.सी. (एरोजीन, अनिलोगार्ड, कन्ट्रोल एच) की 530 मिली. मात्रा या अनिलोफॉस 50 ई.सी. (अनिलोगार्ड) 325 मि.ली. या अनिलोफॉस 18 ई.सी. (रिको) 900 मि.ली. या प्रेटिलाक्लोर 50 ई.सी. (रिफिट इरेज) 800 मिली. या प्रेटिलाक्लोर 40 ई. डब्ल्यू (एरिजान) 1000 मिली. या प्रेटिलाक्लोर 6.0 प्रतिशत + पायरोजोसल्फयूरोन ईथाईल 0.15 प्रतिशत जी.आर. (इरोज 6.15 प्रतिशत दानेदार) 4.0 किग्रा. या ओक्साडायर्जिल (टोपस्टार 80 प्रतिशत घु.पा.) 50 ग्रा. मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 60 किग्रा. सूखी रेत में मिलाकर रोपाई के 2-3 दिन बाद खड़े पानी में छिड़क दें। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु मेटसल्फ्यूरोन + क्लोरीम्यूरान (एलमिक्स 20 घु. पा.) का 8 ग्राम तैयारशुदा मिश्रण + 0.2 प्रतिशत सरफेक्टेन्ट या ईथाक्सी सल्फ्यूरान (सनराईस 15 घु. दाने) 50 ग्राम या 2, 4-डी एस्टर की 400 ग्राम (प्रोडेक्ट) का पौध रोपण के 20-25 दिन बाद 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें अथवा पिनोक्सुलाम (ग्रेनाईट 24 प्रतिशत एस.सी.) की 37.5 मिली. मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से 120 लीटर पानी में मिलाकर पौध रोपाई के 8-12 दिन बाद छिड़काव करें। छिड़काव करने से एक दिन पहले व एक दिन बाद खेत में पानी खड़ा न हो। धान में मिले जुले खरपतवारों के लिए 100 मिली. बिस्पाइरी बैक सोडियम (नोमिनी गोल्ड/तारक) 10 प्रतिशत एस एल को 200 लीटर पानी में घोलकर पौध रोपण या सीधी बिजाई के 15-25 दिन बाद प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। छिड़काव करने से एक दिन पहले व एक दिन बाद खेत में पानी खड़ा न हो। ध्यान में रखें कि उपर्युक्त खरपतवारनाशकों में से केवल एक ही का प्रयोग एक बार ही करना होता है।

बीजजनित रोगों से बचाव के लिए बीजोपचार अवश्य करें। भारी व स्वस्थ बीज के चुनाव हेतु 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 कि.ग्रा. नमक) में बीज को थोड़ा-थोड़ा करके डालें। ऊपर तैरते हुए बीज तथा अन्य पदार्थों को बाहर निकालकर नष्ट कर दें। नीचे बैठे भारी बीज को साफ पानी में 3-4 बार धो लें ताकि बीज की सतह पर नमक का अंश न

रहने पाए और फिर बीजगत फफूंद व जीवाणुओं के निवारण के लिए फफूंदनाशक उपचार करें। इसके लिए 10 लीटर पानी में 10 ग्राम कार्बेन्डाज़िम (बाविस्टिन) व 2.5 ग्राम पौसामाईसिन या 1 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन घोल लें और इस घोल में 8 कि.ग्रा. लंबी किस्मों के व 12 कि.ग्रा. बौनी किस्मों के बीज को 24 घण्टे तक भिगोकर उपचारित करें। धान की पनीरी को उखाडने से 7 दिन पहले कार्बेन्डाज़िम 1 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से रेत में मिलाकर पनीरी में एक साथ बिखेर दें। ध्यान रहे पनीरी में उथला पानी हो। धान की पनीरी खड़े पानी में ही उखाड़ें। पौध शय्या में यदि पौध पीली पड़कर सफेद हो जाए तो 0.5 प्रतिशत हरा कसीस या फैरस सल्फेट के घोल का छिड़काव करें।

धान में जड़ की सूंडी की समस्या हो तो सेविडाल 4-जी या कार्बोफ्यूरान 3-जी या 4 कि.ग्रा. फोरेट 10-जी प्रति एकड़ डालें। दवाई एक सार डालने के लिए इनमें यूरिया खाद मिला दें।

बाजरा

बाजरा के बीजने का समय आ ही गया है। उन्नत संकर किस्मों, एच एच बी 50, 60, 67 (संशोधित), एच एच बी 94, 117 व एच एच बी 146, 197, 216, 223, 226, 234, 272 तथा मिश्रित एच सी 10 व 20 के बीज का अपने साधनों के हिसाब से प्रबंध कर लें। संकर बाजरे का बीज हर साल नया लेकर ही बोएं। वैसे तो 1-15 जुलाई तक का समय बाजरे की बिजाई का उत्तम समय है परंतु बारानी इलाकों में मानसून की पहली वर्षा पर ही बिजाई शुरू करें। खेत को 2 या 3 बार जोतकर फौरन सुहागा लगाकर अच्छी तरह तैयार करें ताकि घास-फूस न रहे व नमी बनी रहे। बारानी क्षेत्रों में वर्षा से पहले खेत के चारों तरफ खूब मज़बूत डोलें बनाएं ताकि खेत में पानी जमा हो जाए तो आगामी फसल के काम आए। एक एकड़ के लिए 1.5 से 2 कि.ग्रा. बीज चाहिए। खेत में सही उगाव के लिए बिजाई खूड़ों में इस तरह से करें कि बीज के ऊपर 2.0 सैं.मी. से अधिक मिट्टी न पड़े। दो खूड़ों का फासला 45 सैं.मी. रखें। वर्षा के मौसम में मेढ़ों पर बिजाई करना अच्छा होता है। इस तरीके की बिजाई के लिए विश्वविद्यालय के शुष्क खेती अनुसंधान केन्द्र द्वारा निर्मित मेढ़ों पर बीजने वाले हल का प्रयोग करें।

यदि असिंचित संकर बाजरा इस माह के अंत में बोने जा रहे हैं तो उसमें 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, जोकि लगभग 35 कि.ग्रा. यूरिया से प्राप्त हो सकती है, बिजाई के समय डालें। यदि खेत में फास्फोरस की मात्रा मध्यम दर्जे से कम है तो इस ज़मीन में 50 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से भी डालें। रेतीली व हल्की ज़मीन में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय प्रति एकड़ अवश्य डालें।

सिंचित क्षेत्रों में संकर बाजरे में बिजाई के समय 25 कि.ग्रा. नत्रजन, 25 कि.ग्रा. फास्फोरस व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। इसके लिए बिजाई के समय 55 कि.ग्रा. यूरिया व 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट प्रति एकड़ डालें। बाकी नत्रजन को दो बार बराबर मात्रा में पौधों की छंटाई के बाद व सिट्टे निकलते समय डालें।

बिजाई से पूर्व बीजोपचार करना न भूलें। बीजोपचार के लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 कि.ग्रा. नमक) में बाजरे के बीज को थोड़ा-थोड़ा डालकर हाथ से हिलाएं। चेपा के पिंड तथा तैरते हुए पदार्थों को निकाल कर नष्ट कर दें तथा नीचे बैठे हुए भारी बीजों को साफ पानी से 3-4 बार अच्छी तरह धोकर छाया में सुखा लें ताकि बीज पर से पानी सूख जाए और पुन: प्रति किलोग्राम बीज का 4 ग्राम थाइरम या मैटालैक्सिल 6 ग्राम से सूखा उपचार करके बोएं, जो किसी बीजोपचारी ड्रम या मिट्टी के घड़े आदि में किया जा सकता है। घड़े या ड्रम में दो-तिहाई बीज और आवश्यक अनुपात में दवा डाल देते हैं। यदि उपचार घड़े से करें तो घड़े के मुंह को पॉलिथीन या मोटे कपड़े से बांध लें और फिर बीज व दवा से भरे हुए घड़े या ड्रम को लगभग 10 मिनट तक अच्छी तरह हिलाएं ताकि दवा अच्छी तरह मिल जाए। अगेती बोई फसल, यानि जून के अंतिम या जुलाई के शुरू में बोई गई फसल में अरगट या चेपा का प्रकोप कम होता है।

बाजरे में खरपतवारों की रोकथाम रसायनों द्वारा भी की जा सकती है। बिजाई के तुरन्त बाद 400 ग्राम एट्राजीन 50 प्रतिशत घु.पा. प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। यदि बिजाई के तुरन्त बाद एट्राजीन का प्रयोग न कर सकें तो बिजाई के बाद 10-15 दिन के बीच में भी उतनी ही मात्रा प्रयोग कर सकते हैं।

अरहर

अरहर की कम समय में पकने वाली मानक (एच 77-216), यू पी ए एस-120, पारस (एच 82-1) अच्छी किस्में हैं जोकि 130-140 दिन में पक कर तैयार हो जाती हैं। इन सभी की बिजाई इस माह में पूरी कर लें। एक एकड़ के लिए लगभग 5-6 कि.ग्रा. बीज डालें। इन सभी किस्मों की बिजाई कतारों में 40 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। यह और भी अच्छा रहेगा कि अरहर की दो कतारों के बीच के हिस्से में मूंग या उड़द की कम समय में पकने वाली किस्म की एक-एक कतार उगाई जाए। यदि ऐसा करना हो तो खूड़ों का फासला 50 सैं.मी. रखकर अरहर की बिजाई करें। बीज को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके ही बोएं। जिन खेतों में गत वर्ष अंगमारी का प्रकोप रहा हो उनमें अरहर की खेती न करें।

अरहर की बिजाई करते समय 18 कि.ग्रा. यूरिया और 100 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट या इनके अभाव में 35 कि.ग्रा. डाइअमोनियम फास्फेट (डी. ए. पी.) प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के समय ड्रिल करें। बीज को बोते समय राईजोबियम का टीका लगाने से पैदावार में वृद्धि की संभावना रहती है। इसके लिए एक एकड़ के बीज में एक टीका राइजोबियम का व एक टीका फास्फोबैक्टीरिया का बिजाई से पहले लगाना चाहिए।

मूंगफली

मूंगफली की बिजाई इस माह के अन्तिम सप्ताह से शुरू कर देनी चाहिए तथा जुलाई के प्रथम सप्ताह तक पूरी कर लें। इसकी उन्नत किस्मों, मुख्यत: गुच्छेदार किस्मों, एम एच-4 व पंजाब मूंगफली नं. 1 बोने की

सिफारिश की जाती है। बुवाई कतार से कतार का फासला 30 सैं.मी. रखकर करनी चाहिए। कतारों में बुवाई इस प्रकार करें कि बीज लगभग 15 सैं.मी. के फासले पर पड़े जबकि पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए यह फासला 22.5 सैं.मी. रखें। एम एच 4 के लिए 32 कि.ग्रा. गिरी व पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए 34 किलोग्राम गिरी प्रति एकड़ की दर से डालें।

मूंगफली बोते समय एक एकड़ भूमि में बिजाई के समय 13 कि.ग्रा. यूरिया व 125 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट, 16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट मिलाकर ड्रिल करें। मूंगफली में जिप्सम का प्रयोग लाभदायक पाया गया है।

दीमक व सफेद लट के प्रकोप से फसल को बचाने के लिए 15 मि. ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या क्विनलफॉस 25 ई.सी. प्रति कि.ग्रा. बीज में बिजाई से दो-तीन घंटे पूर्व मिला लें।

जून में वर्षा होते ही सफेद लट के प्रौढ़ों (भूण्डों) को अभियान चलाकर नष्ट करें। बीज गलन व पौध गलन से बचाव के लिए रोगमुक्त गिरियों को बोने से पूर्व कैप्टान या थाइरम (3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित अवश्य कर लें।

तिल

तिल की बिजाई अगले महीने या मानसून की पहली वर्षा पर की जा सकती है। इसके लिए उन्नत किस्म हरियाणा तिल नं. 1 व एच टी 2 की सिफारिश की जाती है। हल्की ज़मीन में एक एकड़ के लिए लगभग 2 कि. ग्रा. बीज इस्तेमाल करें और पंक्तियों में एक फुट के फासले पर बिजाई करें। पौधे से पौधे का फासला 15 सैं.मी. रखें। हल्की ज़मीन में बिजाई के समय 33 कि.ग्रा. यूरिया प्रति एकड़ पोरें। खुडों का फासला 30 सैं.मी. रखें। जड़गलन व तना गलन के बचाव के लिए बीज का उपचार थाइरम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से करें।

मक्का

मक्का की बिजाई इस माह के अंत में शुरू कर लें। केवल उन्नत किस्में एच एच एम-1, एच एच एम-2, एच एम-4, एच एम-5, एच एम-10, एच एम-11, एच क्यू पी एम-5, एच क्यू पी एम-4 व एच क्यू पी एम-1 बीजें। एक एकड़ में बिजाई के लिए 8 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है। खेत को अच्छी तरह तैयार करके बिजाई कतारों में 75 सैं.मी. व पौधे से पौधे की 22 सैं.मी. की दूरी पर करें। मक्का की किस्मों में 135 कि.ग्रा. यूरिया, 150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालें। निम्न व मध्यम पोटाश स्तर वाली ज़मीन में 20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश, फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट बिजाई पर डालें व 1/3 नत्रजन की मात्रा बिजाई पर, 1/3 जब फसल एक फुट की लंबाई की हो जाए व 1/3 मात्रा जब सिट्टे निकलने वाले हों तब डालें। संकर बाजरा (बारानी क्षेत्रों में) के लिए 35 कि.ग्रा. यूरिया व 50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग करें।

बीज गलन व पौध अंगमारी से बचाव हेतु बोने से पहले बीज को थाइरम (4 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करें। मक्की में होने वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए एट्राजीन 50 प्रतिशत घु.पा. की 400-600 ग्राम मात्रा प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के तुरन्त बाद 200-250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। मक्की में सभी तरह के खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए टेम्बोट्रायोन (लोडिस 34.4 प्रतिशत घु.पा.) का 115 मिली. + 400 मिली. चिपचिपे पदार्थ को 200 लीटर पानी में मिलाकर बिजाई के 10-15 दिन बाद या खरपतवार की 2-3 पत्ती की अवस्था पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

गेहूँ

बीज हेतु रखने वाले गेहूँ का यदि आप सौरताप या सूर्य की गर्मी से बीजोपचार कर लें तो आप अगले वर्ष इन्हीं बीजों से खुली कांगियारी रहित गेहूँ की फसल ले सकते हैं। बीजोपचार के लिए मई-जून के महीने में किसी शांत व धूप वाले दिन गेहूँ को 8 बजे प्रात: से 12 बजे दोपहर तक पानी में भिगोयें। ऊपर तैरते हुए पदार्थों को बाहर निकालकर नष्ट करें। चार घण्टे बाद भीगे हुए बीज को किसी पक्के फर्श या तिरपाल पर दिन भर सुखाकर अगले वर्ष बोने के लिए प्रयोग में लाएं। धूप उपचार के बाद किसी दवा उपचार की आवश्यकता नहीं।

सोयाबीन

जून के अंत से जुलाई के आरंभ तक बिजाई करें। अच्छे जमाव के लिए बिजाई के समय ज़मीन में नमी पूरी मात्रा में होनी चाहिए। 30 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़, कतार से कतार का फासला 45 सैं.मी. रखकर 2.5 सैं. मी. गहरी बिजाई करें। पी के 416, 564 और 472 किस्में ही बोएं। 22 किलोग्राम यूरिया और 200 कि.ग्रा. एस.एस.पी. प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। फसल की नाइट्रोजन की ज़रूरत पूरी करने के लिए बीज का सोयाबीन के राइजोबियम टीके से उपचार अवश्य करें।

ज्वार

एस एस जी 59-3, एच सी 136, 171, 308 एच जे 541 व एच जे-513 किस्मों की जून 25 से 10 जुलाई तक बिजाई करें। 20-24 कि. ग्रा. बीज व सुडान घास के लिए 12-14 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़, 25 सैं. मी. कतार से कतार की दूरी पर बिजाई करें। कम वर्षा वाले व बारानी इलाकों में बिजाई के समय 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ डालें। सारी खाद बिजाई के समय कतारों में ड्रिल करें। अधिक वर्षा वाले व सिंचित इलाकों में 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के समय तथा 10 कि. ग्रा. नाइट्रोजन प्रति एकड़ बिजाई के एक महीने बाद भी डालें। ज्वार में खरपतवारों की रोकथाम के लिए बिजाई के 7-15 दिन के अन्दर-अन्दर 200 ग्राम अट्राजीन 50 घु.पा. प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें।

सब्जियों में

टमाटर

टमाटरों को अधपका ही तोड़ें तथा पकाकर बाज़ार में बेचने के लिए

भेजें। फसल की नियमित रूप से सिंचाई करें तथा ज़रूरत पड़ने पर कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करें। विषाणु रोग से ग्रसित पौधों को निकालकर नष्ट कर दें।

खरीफ की फसल के लिए टमाटर के बीज की नर्सरी में बिजाई करें। टमाटर की फसल के लिए उन्नत किस्मों को ही प्रयोग में लें, जैसे कि हिसार अरुण, हिसार ललित और हिसार लालिमा। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 200 ग्राम बीज की ज़रूरत होगी। नर्सरी को लगभग 20 सैं. मी. ऊंचा बनाएं जिससे कि अधिक वर्षा से पौध को हानि न हो। बिजाई से पहले बीज का उपचार करें। थाइरम या कैप्टान नामक दवा एक ग्राम प्रति 400 ग्राम बीज की दर से प्रयोग करें। नर्सरी में पौध की देखरेख करें।

इस फसल में हरा तेला, सफेद मक्खी और माईट जैसे रस चूसने वाले कई कीड़े लग जाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। फल छेदक कीड़े के लिए 75 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेकामेथ्रिन 2.8 ई.सी. या 60 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ खेत पर छिड़काव करें। दवा प्रयोग करने से पहले ग्रसित फलों को तोड़ कर नष्ट कर दें।

बैंगन

बैंगन के कच्चे फलों की तुड़ाई करें और बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। ध्यान रखें कि किसी तेज़ धार वाले चाकू से फलों को पौधे से काटें। ज़रूरत पडने पर फसल की सिंचाई करें तथा विषाणु रोग से बचाव करें। रोगी पौधों को उखाड़कर फेंक दें। फल व गोभ छेदक सूण्डी से ग्रसित फल व गोभ को काटकर ज़मीन में दबा दें तथा 60 मि.ली. स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर तीन छिड़काव करें।

खरीफ की फसल के लिए नर्सरी में बिजाई करें। उन्नत किस्मों को प्रयोग में लाएं, जैसे बी आर 112, हिसार श्यामल (एच 8), हिसार प्रगति, एच एल बी-25 तथा हिसार बहार।

एक एकड़ खेत में बिजाई के लिए लगभग 200 ग्राम बीज की मात्रा की आवश्यकता होगी। बिजाई से पहले बीज का थाइरम या कैप्टान नामक दवा से (एक ग्राम दवा प्रति 400 ग्राम बीज) उपचार करें। समय से खेत की तैयारी शुरू कर दें। इसमें हरा तेला, सफेद मक्खी तथा माईट के नियंत्रण के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. का 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ में छिड़काव करें।

मिर्च

फसल में तैयार मिर्चों की तुड़ाई करें तथा उन्हें बेचने के लिए बाज़ार भेजें। ज़रूरत पडने पर सिंचाई करें। हानि पहुंचाने वाले कीड़ों, थ्रिप्स, अल और सफेद मक्खी तथा माईट से फसल के बचाव के लिए 400 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 300 मि.ली. प्रेमप्ट 20 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें तथा ज़रूरत पड़ने पर 15 दिन के अंतर पर फिर दोहराएं। कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से विषाणु रोगों का भी नियंत्रण हो जाता है। विषाणु रोगग्रस्त पौधों को निकालकर नष्ट कर दें। खरीफ की फसल के लिए टमाटर में बताए तरीके से मिर्च की भी नर्सरी में बिजाई करें। इनकी उन्नत किस्में एन पी 46ए, पंत सी-1, पूसा ज्वाला हैं। इसके लिए 400 ग्राम बीज की प्रति एकड़ आवश्यकता होगी।

अगेती फूलगोभी

इस माह अगेती फूलगोभी (किस्म पूसा कातकी) की बिजाई नर्सरी में करें तथा पौध तैयार करें। अगेती फूलगोभी के लिए लगभग 400-500 ग्राम बीज एक एकड़ खेत के लिए काफी है। नर्सरी लगभग 20 सैं.मी. ऊंची बनाएं तथा बिजाई से पहले बीज का उपचार करें (एक ग्राम थाइरम या कैप्टान प्रति 300 ग्राम बीज की दर से)। यदि बिजाई पिछले माह में की गई है तो उसकी उचित देखभाल करें। आर्द्रगलन रोग से बचाने के लिए नर्सरी में पौध को 0.3 प्रतिशत कैप्टान के घोल से सींचें। समय पर खेत की तैयारी करें। नर्सरी में वर्षा का पानी न रुकने दें।

भिण्डी

भिण्डी के नर्म फलों को नियमित रूप से तोडें व बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। हरे तेले व चित्तीदार सूण्डी से बचाव के लिए पहले बताई गई दवाइयों का इस्तेमाल करें। दवा के प्रयोग के बाद 8-10 दिनों तक फलों को काम में न लें। दवा के छिड़काव से पहले, सभी तैयार फलों को तोड़ लें।

खरीफ की फसल के लिए खेत की तैयारी करें। एक एकड़ खेत में 10 टन गोबर की खाद डालकर जुताई करें तथा बिजाई से पहले 12 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (50 कि.ग्रा. किसान खाद) तथा 25 कि.ग्रा. फास्फेट (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ की दर से दें। पोटाश खाद मिट्टी की जांच के आधार पर दें। खेत को क्यारियों में बांट लें। भिण्डी की विषाणु रोगरोधी किस्मों, वर्षा उपहार या हिसार उन्नत का चुनाव करें। एक एकड़ के लिए लगभग 6 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। जड़ गलन नामक रोग की रोकथाम के लिए बिजाई करने से पहले बीजोपचार कैप्टान या बाविस्टिन नामक दवा से (एक ग्राम दवा प्रति 400 ग्राम बीज) कर लें। बिजाई कतारों में करें। कतारों की दूरी 45-60 सैं.मी. रखें तथा पौधों में दूरी 30 सैं.मी. रखें। कीड़ों की रोकथाम के लिए बैंगन के लिए बताई गई दवा का प्रयोग करें।

तरबूज व खरबूजा

तरबूज व खरबूजा के पके फलों को तोड़कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। इस महीने दोनों फसलें पककर तैयार हो जाती हैं तथा तुड़ाई का काम भी पूरा कर लिया जाता है। फलों के पकते समय सिंचाई न करें। जल्दी वर्षा होने पर इन फलों का मीठापन कम हो जाता है। फसल पूरी हो जाने के बाद खेत को खरीफ की अन्य फसलों के लिए तैयार करें।

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां

कद्दू जाति की अन्य सब्जियां, जैसे लौकी, तोरी, करेला, टिण्डा आदि कच्चे फलों को तोड़कर नियमित रूप से बाज़ार भेजें। खरीफ की बेल

वाली सब्जियों को लगाने के लिए इस महीने खेत तैयार करें। खेत तैयार करते समय 6 टन गोबर की खाद, 6 किलोग्राम नाइट्रोजन (25 किलोग्राम किसान खाद), 10 कि.ग्रा. फास्फोरस (60 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 10 कि.ग्रा. पोटाश (16 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें। खाद को नालियों में दें।

कद्दू जाति की फसलों में लाल भुण्डी (लालड़ी) से बचाव के लिए 25 मि.ली. साईपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर भी प्रति एकड़ छिड़काव कर सकते हैं। इस कीट की लटों से बचाव के लिए 1.6 लीटर क्लोरपाईरिफॉस 20 ई.सी. को बिजाई के एक महीने बाद सिंचाई के साथ लगाएं।

सफेद चूर्णी रोग से बचाव हेतु 8-10 किलोग्राम प्रति एकड़ बारीक गंधक के धूड़े का भुरकाव या धूड़ा करें, धूड़ा सुबह या शाम के समय करें या 500 ग्राम घुलनशील गंधक (सलफैक्स) को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें। खरबूजे की फसल पर गंधक का धूड़ा न करें।

इन फसलों में अल, माईट, सफेद मक्खी और हरा तेला की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। यदि फसल में फल मक्खी का प्रकोप हो तो 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. व 1.25 किलोग्राम गुड़ को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

शकर कन्दी

शकरकन्दी की काटों को इस माह भी लगाया जा सकता है। खेत की तैयारी पिछले माह बताए गए तरीके से करें तथा खरपतवार निकालें।

खरीफ प्याज़

खरीफ प्याज़ (किस्म एन-53 एवं एग्रीफाउण्ड डार्क रैड) के बीज की नर्सरी में बिजाई करें। इसके लिए लगभग 5-6 किलोग्राम बीज की एक एकड़ के लिए आवश्यकता होगी। इसके लिए जून का दूसरा पखवाड़ा उचित समय है। नर्सरी ऐसे स्थान पर बनाएं जहां वर्षा का पानी न रुकता हो। अधिक गर्मी से बचाव के लिए नर्सरी की देखभाल आवश्यक है। खरपतवार निकालें, नियमित सिंचाई करें तथा बीमारी से बचाएं।

अरबी

फसल की नियमित सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। खड़ी फसल में नाइट्रोजन वाली खाद दो बार देने की आवश्यकता होती है- प्रथम बार बिजाई के लगभग 3-4 सप्ताह बाद तथा दूसरी मात्रा इतने ही दिनों के अंतर पर। अरबी की नई बिजाई भी की जा सकती है। खेत की तैयारी व लगाने की विधि पहले बता दी गई है।

पालक

पालक की फसल की नियमित सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें और कटाई लायक होने पर काटें। पालक की नई बिजाई भी तैयार क्यारियों में की जा सकती है।

मूली

पूसा चेतकी मूली की किस्म को गर्मी में लगाया जा सकता है। यदि आपने इसकी बिजाई पहले कर रखी है तब फसल की सिंचाई करें, निराई करें तथा जड़ों पर मिट्टी चढ़ा दें। इसकी फसल बिजाई के बाद लगभग 40 दिनों में तैयार हो जाती है। कीड़ों आदि का आक्रमण होने पर मैलाथियान या कार्बेरिल जैसी दवाओं का छिड़काव करें। जड़ों को नर्म अवस्था में, कड़ी होने से पहले उखाड़ लें तथा धोकर बाज़ार भेजें। नई बिजाई भी इसी महीने की जा सकती है।

अन्य सब्जियां

अन्य सब्जियों, जैसे ग्वार व लोबिया, की फसलों की नियमित रूप से सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। नर्म फलियों को तोड़कर बाज़ार में भेजें। कीट व बीमारियों से बचाव के लिए कीटनाशक व फफूंदनाशक दवाओं का प्रयोग करें तथा प्रयोग के 8-10 दिन बाद तक फसल को खाने के काम में न लाएं। ग्वार व लोबिया की खरीफ की फसल लेने के लिए खेत की तैयारी करें तथा बिजाई करें।

फलों में

नींबूवर्गीय फल

नये पौधों को गर्मी से बचाएं। पुराने पौधों के तनों पर 3 कि.ग्रा. चूने में 2 कि.ग्रा. नीला थोथा को 30 लीटर पानी में अलग-अलग भिगोकर और छानकर मिलाकर लेप करें ताकि सूर्य की तेज़ रोशनी से तने को क्षति न पहुंचे। यह घोल हर बार ताज़ा बनाकर ही प्रयोग में लाएं। इसके अतिरिक्त सिंचाई भी करते रहें व सिंचाई के पश्चात मल्चिंग अवश्य करें। जस्ते की कमी व फल गिरने से बचाने के लिए 5 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट और 2.5 कि.ग्रा. बुझा हुआ चूना 1000 लीटर पानी में घोल कर पौधों पर छिड़काव करें। इसी प्रकार नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए 1-2 कि.ग्रा. यूरिया 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। पत्तों में लीफ माईनर के नियंत्रण के लिए 750 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। नए व छोटे पौधों को लू से बचाएं, नियमित सिंचाई कर उचित नमी बनाए रखें।

अंगूर

नई या एक साल पुरानी बेलों में 25-30 ग्राम यूरिया प्रति बेल हर दूसरी सिंचाई पर देते रहें, सिंचाई भी करते रहें व फालतू बढ़वार रोकते रहें। बेलों की सिंचाई 10 दिन के अंतर पर करते रहें लेकिन जब फल तोडना शुरू करें तो सिंचाई करना बंद कर दें और फल खत्म होने पर सिंचाई ज़रूर करें। पुरानी बेलों में लगे फलों को चिड़ियों से बचाएं और पके फलों के गुच्छों को सावधानी से तोड़कर बाज़ार भेजें।

बालों वाली सूण्डी व अन्य कीटों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. डाइक्लोरवास 76 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़

छिड़कें। थ्रिप्स के लिए 500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि. ली. फेनवालरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बेर

इस महीने के दूसरे सप्ताह तक बेर की कटाई-छंटाई का काम समाप्त कर लें और पौधों की छतरी तक गुड़ाई करें। प्रति पेड़ लगभग 100 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद व सिंगल सुपर फास्फेट 2.5 कि.ग्रा. अच्छी तरह मिलाकर गहरी सिंचाई करें। बत्तर आने पर गहरी जुताई करें।

अमरूद

नए पौधों को गर्मी व लू से बचाएं और सिंचाई सप्ताह में एक बार अवश्य करें। पौधों की सूखी शाखाओं को निकाल दें। फल मक्खी के लिए फिरोमोन ट्रैप का प्रयोग करें।

आड़ू

इस महीने के पहले सप्ताह तक शरबती और मैचलैस किस्म के फल पकने शुरू हो जाएंगे इसलिए उनकी तुड़ाई का प्रबंध करें और हल्की सिंचाई भी करते रहें और तुड़ाई से पहले सिंचाई बंद कर दें। नए पौधों के तनों के साथ मिट्टी चढ़ाएं।

आम

बागों की सिंचाई नियमित रूप से करते रहें। छोटे पौधों को गर्मी व लू से बचाएं। नाइट्रोजन की बाकी बची मात्रा अगर पिछले महीने नहीं डाली है तो इस महीने डालें। पके हुए फलों की ग्रेडिंग करके बाज़ार में भेजें।

पशुओं में

गाय-भैंस

- पिछले माह के अनुसार पशुओं को अत्यधिक तापक्रम, धूप व लू से बचाने के उपाय करें व इस महीने में भी पशुपालकों को विशेष रूप से गर्मी प्रबंधन के उपाय करने चाहिएं।
- जैसा कि मई मास के कार्य में बताया गया था कि पशुओं को उच्च ऊर्जा के साथ-साथ सुपाच्य भोजन, बाई-पास प्रोटीन का उपयोग, गेहूँ चोकर व जौ का पशु-आहार में बढ़ाना, दिन में कम से कम 4-5 बार स्वच्छ पानी देना, 2-3 बार नहलाना, खनिज मिश्रण का उपयोग, हवादार आवास, शेड़ में फव्वारों वाले पंखे/कूलर आदि का इस्तेमाल, रात्रिकाल/सांयकाल में भोजन व्यवस्था आदि कार्य पशुपालक कर सकते हैं।
- 'पाइका' ग्रस्त पशुओं को पेट के कीड़े मारने की दवा देकर लवण-मिश्रित आहार प्रदान करें, ताकि 'पाइका' रोग के लक्षणों से छुटकारा प्राप्त हो।
- पशुओं को हरा चारा नहीं मिल रहा हो तो साईलेज एवं 'हे' का उपयोग किया जाए।
- पशुओं को विटामिन एवं लवण-मिश्रित आहार दें।
- ग्रीष्मकाल में पशुओं की भूख कम हो सकती है व पशु कम भोजन खाते हैं। अत: उन्हें कम भोजन में अधिक ऊर्जा की ज़रूरत हो सकती है। अत: उन्हें तेल इत्यादि भी दे सकते हैं। इसके साथ-साथ पशुओं का पाचन तंत्र भी बिगड़ सकता है, अत: उन्हें सुपाच्य भोजन एवं पर्याप्त मात्रा में पानी भी दें।
- गेहूँ की कटाई के बाद नई तूड़ी आने से पशुओं के पेट में बंधा पड़ सकता है। अत: पशुओं का आहार एकदम से न बदलें और बंधा पड़ने पर चिकित्सीय सलाह से हींग, हरड़, सेंधा नमक, मोटी सौंफ इत्यादि दें।
- गलघोंटू व मुँह-खुर के टीकाकरण सुनिश्चित करें।
- पशुओं को पेट में कीड़े मारने की दवा दें।
- गर्मियों के मौसम में पैदा की गई ज्वार में ज़हरीला पदार्थ हो सकता है, जो पशुओं के लिए हानिकारक है। अप्रैल में बिजाई की गई ज्वार के खिलाने से पहले खेत में 2-3 बार पानी अवश्य लगाएं।

भेड़ें

- पिछले माह में भेड़ के ऊन कतरने का कार्य न किया हो तो इस माह में कर लें।
- भेड़ के शरीर को ऊन कतरने के 21 दिन बाद, बाह्य परजीवियों से बचाने के लिये कीटाणुनाशक घोल से भिगोएं। इसके लिए अपने पशु चिकित्सक की सलाह से उन्हें समय-समय पर दवाई पिलाएं।
- भेड़ों में रोगों से बचाव के लिए टीकाकरण नज़दीकी पशु चिकित्सालय से करवाएं।
- भेड़ तथा ऊन विकास केन्द्र में बने डिपिंग टैंक में अपनी भेड़ों को नहलाएं।
- इस माह में भेड़ों का प्रजनन चलेगा। अत: अच्छी नस्ल के बच्चे उत्पन्न कराने हेतु अच्छी नस्ल के मेंड़े भी भेड़ तथा ऊन विकास केन्द्र से प्राप्त हो सकते हैं।

फार्म प्रबन्ध/विस्तार शिक्षा

कृषि उत्पादों का अधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए उचित ढंग से मण्डीकरण करें। रबी फसलों की जिन्सों का अच्छा भाव लेने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें।

1. कटाई के बाद किसान, अपनी उपज को एक साथ ही मण्डियों में न लाकर उसे धीरे-धीरे लाएं, जिससे उन्हें कठिनाई न उठानी पड़े तथा उनकी उपज का सही मूल्य उन्हें मिल सके।
2. फसल को जहां तक संभव हो सरकारी संस्था अथवा सहकारी सोसायटी द्वारा बेचें तथा यह ध्यान रखें कि उपज का न्यूनतम मूल्य प्राप्त हो।
3. अच्छी कीमत प्राप्त करने के लिए उपज को साफ-सुथरा करके तथा अच्छी बोरियों में भरकर मण्डी में लाएं। इससे मण्डी में भराई-सफाई का अतिरिक्त खर्चा नहीं लगेगा।

4. किसान को अधिक कीमत प्राप्त करने के लिए बढिया और घटिया किस्म की फसलों को अलग-अलग बेचना चाहिए।
5. किसानों को चाहिए कि वह अपनी फसल मण्डी में तोलकर ले जाएं और बाद में पड़ताल के लिए तोल कराएं।
6. फसल को ग्रेड करा लेने के बाद उसकी उचित कीमत लगती है। कृषि विभाग द्वारा प्रमुख मण्डियों में कृषि उत्पादों की ग्रेडिंग के लिए केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन केन्द्रों पर किसानों की उपज की नि:शुल्क ग्रेडिंग सुविधा उपलब्ध है।
7. विभिन्न जिन्सों (फसलों) के मिश्रण को मण्डी में नहीं ले जाना चाहिए। उनको अलग-अलग बेचने पर ही अधिक लाभ होता है। जैसे गेहूँ व जौ के मिश्रण की बजाय उन्हें अलग-अलग बेचने पर ही अधिक लाभ होता है।
8. फसल बेचने से पहले मण्डी के भाव की जानकारी लेना अति आवश्यक है। किसान को विभिन्न मण्डियों के भाव की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। यह जानकारी अखबार, रेडियो का कृषि कार्यक्रम अथवा व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से प्राप्त हो सकती है।
9. जो किसान भाई अपनी जिन्स को रोककर देर से बेचने की क्षमता रखते हैं तथा जिनके पास जिन्स के भण्डारण की उचित व्यवस्था है उन्हें फसल काटते ही मण्डी लेकर नहीं पहुंचना चाहिए। जिन्स की कम आवक होने पर बेचने से भाव अच्छे मिल जाते हैं व परेशानी भी कम उठानी पड़ती है।

घर-आंगन में

गर्मी के मौसम में बच्चों के शरीर से दस्त एवं उल्टियों के रूप में लगातार पानी निकलने से निर्जलन हो जाता है जिससे बच्चे की आंखें धंस जाती हैं तथा निर्जलन के गम्भीर मामलों में सिर का तालू गिरने लगता है। बच्चा पेशाब कम करता है तथा सुन्न पड़ जाता है तथा बेहोश हो जाता है। बच्चा श्वास भी जल्दी-जल्दी तथा कठिनाई से लेता है। माँ को ऐसी स्थिति आने ही नहीं देनी चाहिए। अगर बच्चे को चार-पांच पतले दस्त आ गए हों तो शीघ्र ही उसे नमक एवं चीनी का घोल बनाकर देना चाहिए। इससे उसमें पानी की कमी नहीं आएगी तथा बच्चे की हालत भी सुधरेगी। नमक व चीनी का घोल बनाने के लिए तीन चुटकी भर नमक, एक मुट्ठी भर चीनी, उबला और ठंडा किया हुआ पांच कप पानी में अच्छी तरह मिलाएं। यदि उपलब्ध हो तो आधे खट्टे नींबू का रस भी मिलाएं।

अतिसार में बच्चों को खिलाना-पिलाना जारी रखना बहुत आवश्यक है। खाना-पिलाना जारी रखने से बच्चे जल्दी अच्छे हो जाते हैं और कुपोषण का शिकार नहीं होते। नमक और चीनी के घोल के साथ-साथ छोटे बच्चे का स्तनपान भी जारी रखें। बड़े बच्चे जो गाय-भैंस का दूध पीते हैं उन्हें बिना पानी मिलाए दूध देना जारी रखें। इसके अतिरिक्त चावल का पानी, दाल का पानी, मूंग की धुली हुई दाल, ताज़ा बना हुआ खाना जैसे खिचड़ी, दलिया आदि थोड़ा-सा घी अथवा तेल डालकर ही पकाएं। दही, केला, और उबला हुआ आलू भी दें। यदि इतना कुछ करने पर भी बच्चे की स्थिति में सुधार नहीं आता तो आप नज़दीकी हस्पताल से संपर्क स्थापित करें।

इस महीने में अत्यधिक गर्मी होने के कारण ज़्यादा से ज़्यादा शुद्ध जल का प्रयोग करें। ताकि आप अपने आपको दूषित जल से होने वाली बीमारियों से बचा सकें। शुद्ध जल के लिए आप जनता वाटर फिल्टर का प्रयोग कर सकते हैं। इसको कैसे बनाया जाए, इसके लिए आप अपने क्षेत्र में कार्यरत ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (गृह विज्ञान) से संपर्क स्थापित करें। इसके अतिरिक्त आप पानी को साफ करने के लिए क्लोरीन की गोलियां नज़दीकी हस्पताल से भी ले सकते हैं।

- कच्चे आम के पन्ने का प्रयोग करके आप अपने आपको एवं परिवार को लू से बचा सकते हैं।
- सिरके में प्याज़ का प्रयोग करके आप अपने आपको एवं परिवार को लू से बचा सकते हैं।
- गर्मी में सूती वस्त्रों का प्रयोग करें तथा खेती के कार्यों में सुरक्षात्मक वस्त्रों का उपयोग करें। लू से बचाव के लिए हमेशा घर से पानी का सेवन करके निकलें।

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं :

haryanakhetihau@gmail.com

फलों द्वारा निर्मित : मुरब्बा एवं कैण्डी

- एकता, राकेश गहलौत एवं तनु मलिक
खाद्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

शरीर के स्वास्थ्य के लिए फलों का नियमित सेवन आवश्यक है। जिससे शरीर विकार रहित सुचारू रूप से चले। साथ ही फलों से आवश्यक विटामिन व खनिज पदार्थ भी प्राप्त होते रहें।

फल पक जाने के बाद कुछ ही समय तक खाने योग्य रहते हैं। ताज़े फलों की जीवन अवधि कम होने के कारण इन्हें परिरक्षण द्वारा सुरक्षित रखा जा सकता है। इससे उनके गुण, शुद्धता एवं लागत मूल्य में भी बचत होती है। इन्हें सुखाने से यह कम जगह लेते हैं। इनमें आवागमन में भी कम खर्च होता है। सर्दी के फलों द्वारा अनेक खाद्य पदार्थ बनाए जा सकते हैं, जैसे: मुरब्बा व कैण्डी। इन्हें बनाने की विधि कुछ इस प्रकार है:

मुरब्बा

मुरब्बा एक पौष्टिक एवं आकर्षक खाद्य पदार्थ है। सेब का मुरब्बा दिल और जिगर के लिए लाभदायक है। बेल एवं आंवले का मुरब्बा भी औषधीय गुणों से भरपूर होता है।

सेब का मुरब्बा:

1. मध्यम आकार के फल लें, काटें, गोदें व 2 प्रतिशत नमक के घोल में डालें।
2. अब फलों को नमक के घोल से निकालें, साफ पानी में धोएं। मलमल के कपड़े में बाँध कर उबलते पानी में 2 से 3 मिनट डालकर थोड़ा नर्म करें।
3. चाशनी बनाने के लिए 1 कि.ग्रा. फल में 1.3 से 1.5 कि.ग्रा. चीनी, 400 मि.ली. पानी और 2 से 3 ग्राम सिट्रिक अम्ल का प्रयोग करें। सर्वप्रथम नर्म किए फल टुकड़े को 40 से 50 प्रतिशत चीनी के शरबत में डाल दें।
4. अगले दिन फलों का घोल निकाल लें और चाशनी में थोड़ी चीनी मिलाकर एक मिनट उबाल दें और फलों पर डाल दें।
5. दो दिन बाद चाशनी को फलों से निकाल लें, चीनी मिलाकर एक उबाला दें ताकि दो-तीन तार की चाशनी बने। अब 4-5 दिन तक चाशनी न छोड़ें।
6. चाशनी के शहद जितना गाढ़ा होने की प्रतीक्षा करें। अब इसे कीटाणुरहित बर्तन में डालकर सील बन्द करें।

आंवले का मुरब्बा :

1. बड़े-बड़े आंवले (बनारसी किस्म) छांटें (बिना रेशे वाले) और धोएं।
2. आंवले को दो दिन तक साफ पानी में भिगो लें और फलों को अच्छी तरह कांटे से गोद लें। फिर 20 प्रतिशत नमक के घोल में एक दिन तक रखें।
3. इसके बाद आंवले को साफ पानी में धोएं। नमक का ताज़ा घोल फिर तैयार करें और फलों को फिर एक दिन इस घोल में डालें। इस क्रिया को 2 से 3 दिन तक दोहराएं।
4. अब आंवले को साफ पानी में 4 से 5 बार धोएं। फिर इन्हें 2 प्रतिशत फिटकरी के घोल में डालकर एक दिन के लिए रखें।
5. अगले दिन फलों को फिटकरी के घोल से निकाल लें। 3 से 4 बार साफ पानी में धोएं। फिर इसे मलमल के कपड़े में बांधें और उबलते

(शेष पृष्ठ 24 पर)

पोपलर आधारित कृषि वानिकी में औषधीय पौधों का रोपण

- बिमलेन्द्र कुमारी एवं तरूण कुमार
कृषि वानिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वर्तमान समय में पौध अवशेषों से प्राप्त औषधियां सामान्य प्रकार के रोगों के उपचार के लिए बहुत प्रचलित हो रही हैं। विश्वभर में लोग अधिकतर घरेलू उपलब्ध औषधियों पर निर्भर रहते हैं। जिनका स्त्रोत पेड़-पौधे ही हैं, व जिनका कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। चीन विश्व में 5000 औषधीय पौधों की प्रजातियों का इस्तेमाल करता है। जबकि भारत लगभग 7000 प्रकार की औषधियां पौधों की प्रजातियों का उपयोग करता है। डब्लयूएचओ के अनुसार विश्व की 80 प्रतिशत आबादी प्राथमिक उपचार हेतु औषधीय पौधों पर निर्भर है। औषधीय पौधों का मुख्य भण्डार प्राकृतिक वनों में ही पाया जाता है, वहां की प्राकृतिक संरचना व विविधता इन पौधों के लिए वरदान स्वरूप है, क्योंकि औषधीय पौधे वृक्षों के नीचे पनपने वाले व छाया सहनशील होते हैं। परन्तु भारत जैसे देश में हमारे प्राकृतिक वन विकास व बढ़ती हुई आबादी के कारण बहुत सीमित रह गए हैं, इसके अतिरिक्त हर दिन बढ़ती हुई जनसंख्या की औषधीय ज़रूरतों को पूरा करने हेतु इन बहुउपयोगी व अतिआवश्यक संसाधन को संजोने व उत्पादन करने की आवश्यकता है। इन पौधों का संरक्षण करने के लिए औषधीय पौधों को जलवायु व वातावरण के अनुसार चयन कर, विभिन्न प्रकार के कृषि वानिकी सिस्टमस् से स्थान देने की आवश्यकता है।

हमारे देश के उत्तर पश्चिमी भागों में (पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश इत्यादि) पोपलर आधारित कृषि वानिकी बहुत प्रचलित है, व पोपलर के स्थानीय कृषि वानिकी में लगाने से कृषकों की आय लगभग दोगुनी हो जाती है। पोपलर के साथ रबी व खरीफ की मुख्य फसलों (गेहूं, गन्ना व चारा फसलों इत्यादि) को वृक्ष की प्रारम्भिक बढ़त के दौरान (प्रथम 3-4 वर्षों) तक ज़्यादा असर नहीं पड़ता, हालांकि, वृक्षों की आयुकाल के अगले 3-4 वर्षों में फसलों की उत्पादकता पर वृक्षों की छाया के कारण काफी (50 प्रतिशत से अधिक) कमी आ जाती है। परन्तु 6-8 वर्षों के बाद पोपलर का हर वृक्ष किसान की अतिरिक्त आय में कम से कम 3500-4000 रुपये जोड़ता है। जिसके कारण कृषक वर्ग को काफी लाभ मिल रहा है। पोपरल आधारित कृषि वानिकी में यदि हमारे किसान कुछ औषधीय फसलें जिनकी पैदावार छायादार स्थान पर अधिक होती है, को सम्मिलित करते हैं। तो उनका लाभ तीन से चार गुना हो सकता है।

खासतौर पर औषधीय फसलों को यदि पोपलर लगने के 3-4 वर्ष बाद रोपित किया जाता है, तो पहले तीन-चार वर्ष तक किसानों को बिना किसी ज़्यादा नुकसान के मुख्य स्थानीय फसलों के द्वारा लाभ अर्जित हो जाता है, व जब बाद के वर्षों में छाया का विपरीत प्रभाव पड़ता है, तो किसानों के लिए औषधीय फसलें, जो छाया सहनशील हैं उन्हें पोपलर वाले खेतों में रोपित कर अधिक लाभ उठाना चाहिए।

कृषि वानिकी में सम्मिलित की जाने वाली मुख्य औषधीय फसलें :

1. अदरक : अदरक की खेती (समुन्द्र तल से 1500 मी. तक) अपेक्षाकृत नमी वाले व ऊष्ण भागों में की जा सकती है। पौधे की सफलता के लिए मध्यम वर्षा वाले व 20° से 35° C तापमान पाने वाले क्षेत्र उपयुक्त हैं। परन्तु पौधे को नियमित नमी की आवश्यकता है। इसलिए अधिक आर्द्रता वाले व अधिक तापमान वाले भागों में पोपलर आधारित कृषि में किसान लगाकर अधिक मुनाफा ले रहे हैं।

औषधीय गुण :

1. अदरक में कैंसर जैसी भयानक बीमारी से बचाए रखने का गुण होता है। यह कैंसर पैदा करने वाले सेल्स को खत्म करता है।
2. अदरक में खून पतला करने का नायाब गुण होता है और इसी वजह से यह ब्लड प्रेशर जैसी बीमारी में अति लाभदायक है।
3. अदरक पाचन, गैस और सभी तरह के पेट दर्द से भी निजात दिलाता है।
4. अदरक के ज्यूस में गठिया रोग को ठीक करने की क्षमता होती है। और थायराईड से ग्रस्त मरीजों के लिए भी फायदेमंद हैं।
5. अदरक के ज्यूस के नियमित इस्तेमाल से कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम होती है। रक्त के थक्कों को जमने नहीं देता और खून के प्रवाह को बढ़ाता है साथ ही हृदयघात की आशंका से बचाए रखता है।

2. हल्दी : हल्दी की खेती के लिए अधिक नमी व कम तापमान वाले इलाके उपयुक्त हैं, इसलिए इस फसल को ऊष्ण व शुष्क भागों में नहीं लगाया जा सकता। हल्दी भी अदरक के परिवार की फसल है व किसानों को बहुत लाभ पहुंचा सकती है, परन्तु हर इलाके में इस फसल को कृषि वानिकी में शामिल नहीं किया जा सकता।

औषधीय गुण :

1. हल्दी को कच्चे दूध में मिलाकर उबटन लगाने से त्वचा चमकदार एवं बेदाग़ हो जाती है।
2. हल्दी के पाऊडर को गुलाब जल में मिलाकर मुंहासों पर लगाने से मुहांसे जल्दी ठीक हो जाते हैं।
3. कच्ची हल्दी के रस में चुकंदर की पत्तियों का रस मिलाकर बालों में लगाने से बालों का झड़ना बंद हो जाता है।
4. हल्दी में मोटापा कम करने व रोग-प्रतिरोधक क्षमता भी होती है।

3. मुलैहठी : मुलैहठी की फसल कम आर्द्रता वाले व अपेक्षाकृत ऊष्ण भागों में भी ली जा सकती है, व छाया का प्रभाव लाभकारी होने के कारण, फसल के 3-4 वर्षों में उत्पादन देने के कारण, यह औषधीय पौधा पोपलर आधारित कृषि वानिकी के लिए अति उत्तम है क्योंकि वृक्ष के लगभग आधी अवधि के बाद रोपण करने के पश्चात् इसका परिपक्व अवस्था में पहुंचना वृक्ष की उत्पादन अवस्था में पहुंचने पर ही होता है व लगाने के पश्चात् अधिक देखभाल की आवश्कता नहीं रहती। अर्थात् एक बार रोपण करने के पश्चात् सिर्फ इसका उत्पादन ही प्राप्त करना है।

औषधीय गुण :

1. मुलैहठी की जड़ों से एक औषधीय गुणों युक्त रसायन प्राप्त होता है। जिसका वैज्ञानिक नाम ग्लाइसीरहाज़िन है। इसकी मिठास चीनी से 30-50 गुणा अधिक होती है। एक और रसायन सैपोनिक ग्लाइकोसाईड, जो विभिन्न प्रकार के औषधीय गुण प्रदान करता है, भी पाया जाता है।
1. विभिन्न प्रकार के पेट से संबधित रोगों के उपचार में मुलैहठी का उपयोग किया जाता है।
2. हृदय सम्बन्धी रोग जैसे उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्रोल इत्यादि के कंट्रोल के लिए इसका इस्तेमाल होता है।
3. विभिन्न श्वास-तन्त्र के रोगों जैसे खांसी, दमा, इत्यादि के उपचार में भी प्रयुक्त होता है।
4. इसके अतिरिक्त गंजेपन को ठीक करने व अन्य त्वचा सम्बन्धी रोगों के उपचार में भी मुलैहठी उपयोगी है।

4. शतावरी : शतावरी का पौधा लता स्वरूपी होता है व अपेक्षाकृत शुष्क व ऊष्ण भागों में लगाया जा सकता है, इस पौधे की विशेषता भी यही है, कि यह मुलैहठी की भांति बहुवर्षीय है व एक बार लगाने के उपरान्त 3-4 वर्ष बाद ही उत्पादन देता है।

औषधीय गुण :

1. इस औषधीय पौधे में स्त्री रोगों को दूर करने की अद्‌भुत क्षमता है, बांझपन के इलाज में भी उपयोग होता है।
2. कैंसर जैसे रोगों का नाश करने की क्षमता भी होती है।
3. तनाव, मुक्ति, डिप्रेशन जैसे हालात में आराम पहुंचाता है।
4. माताओं में अधिक दूध उत्पन्न करने के लिए भी उपयोग होता है।

5. गिलोय : यह पौधा भी लता प्रकार का है व बहुवर्षीय भी है एवं अपेक्षाकृत कम आर्द्र व अधिक ऊष्ण भागों में लगाया जा सकता है इसलिए इसे भी किसान निसंकोच अपने पोपलर आधारित कृषि वानिकी में स्थान दे सकते हैं व अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं।

औषधीय गुण :

1. बुढ़ापे को दूर रखने के गुण भी गिलोय में पाये जाते हैं।
2. लीवर सम्बन्धित रोगों, पीलिया, हेपेटाइटिस इत्यादि में भी लाभकारी है।
3. कैंसर रोग को समाप्त करने के गुण भी इस पौधे में पाये जाते हैं।
4. हर प्रकार के ज्वर को दूर करने के लिए गिलोय का काढा बहुत लाभकारी है। इसके अतिरिक्त यह पाचन क्रिया को तेज़ करता है। तनाव इत्यादि से मुक्ति प्रदान करता है। बहुत से श्वास संबंधित रोगों में अति लाभकारी है, व जोड़ों के दर्द से निजात दिलाता है।
5. यह एक प्रकार का टॉनिक का कार्य करता है व शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

6. ग्वार पट्ठा : आज के समय में ग्वार पट्ठा के औषधीय गुणों के बारे में सभी अवगत हैं व इस पौधे का सरल रोपण व छाया सहनशीलता, इस पौधे को कृषिवानिकी में लगाने के लिए अति उत्तम बनाते हैं। इस पौधे से किसानों को अर्जित लाभ पत्तियां का आकार बढ़ने पर मिलना शुरू हो जाता है व, इस पौधे के बहुवर्षीय गुण के कारण 3-4 वर्ष तक पौधा आय देता रहता है।

औषधीय गुण :

1. ग्वार पट्ठा का गुद्‌दा औषधीय गुणों से भरपूर है।
2. यह पेट संबधित रोगों में बहुत लाभकारी है।
3. मधुमेह रोग में अतिउत्तम औषधि है।
4. इसमें त्वचा सम्बन्धी रोगों को दूर करने की क्षमता भी है।

थ्रैशर प्रयोग के समय होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव

✎ **विनोद कुमार, मुकेश जैन एवं नरेन्द्र**
फार्म मशीनरी और ऊर्जा अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कुछ ही समय में हरियाणा में रबी की मुख्य फसलों – गेहूं या चना की कटाई और गहाई का समय प्रारम्भ हो जाएगा। गेहूं या चने की गहाई मुख्यत: थ्रैशर से की जाती है। थ्रैशर चूँकि एक मशीन है और इसका प्रयोग करते समय थोड़ी-सी लापरवाही बरतने से इससे होने वाली दुर्घटनाओं की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। प्रत्येक वर्ष थ्रैशरों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है, इसलिए इससे होने वाली दुर्घटनाएं भी लगातार बढ़ रही हैं।

हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार, हर साल 1000 मशीनों के प्रयोग पर औसत 25 दुर्घटनाएं हो जाती हैं। यद्यपि भारत सरकार द्वारा इन दुर्घटनाओं से बचाव हेतु 'खतरनाक मशीन अधिनियम, 1983' जैसे कानून लागू किए हुए हैं, फिर भी प्रतिवर्ष इनसे होने वाली दुर्घटनाओं की औसत संख्या 20 प्रतिशत से अधिक है। इन दुर्घटनाओं में, लगभग 73 प्रतिशत मानवीय असावधानी से, 13 प्रतिशत मशीनी कारणों से तथा शेष 14 प्रतिशत अन्य कारणों से होती हैं। इन दुर्घटनाओं से बचाव के लिए किसानों को जागरूक होने की आवश्यकता है।

थ्रैशर से होने वाली अधिकतर घटनाओं को थोड़ी-सी सावधानी बरतने से टाला जा सकता है। किसानों को थ्रैशर प्रयोग के समय निम्नलिखित सावधानियां रखनी चाहिएं:

1. सही थ्रैशर का चुनाव करें : किसानों को भारतीय मानक 'शक्ति चालित गहाई मशीन (थ्रैशर)-सुरक्षा सम्बन्धी अपेक्षाएं, 2002' के अनुसार बने थ्रैशरों को ही खरीदना चाहिए। इस मानक से बने थ्रैशर में संभावित दुर्घटनाओं से बचने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध होते हैं। यद्यपि इस मानक में थ्रैशर के लिए प्रचुर संख्या में नियम दिए हुए हैं, फिर भी सुरक्षा की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण नियम इस प्रकार हैं :

क. 24 हॉर्स पॉवर से अधिक क्षमता वाले थ्रैशर के भरण नाली (गाला) की लम्बाई कम से कम 900 मिलीमीटर और चौड़ाई (ड्रम के मुंह पर) कम से कम 220 मिलीमीटर और ऊपर से ढके हुये भाग की लम्बाई कम से कम 550 मिलीमीटर होनी चाहिए (चित्र 1), जिससे कि हाथ गहाई करते समय धुरे तक आसानी से न पहुँच सके। ढके हुए भाग का उठाव 10-30 डिग्री होना चाहिए। भरण नाली को थ्रैशर के क्षैतिज से 5-10 डिग्री के कोण पर ऊपर की ओर उठा देने से फसल आसानी से थ्रैशर में पहुँच जाती है।

ख. भरण नाली में कहीं भी नुकीले किनारे नहीं होने चाहिएं।

ग. थ्रैशर के घूमने वाले कलपुर्ज़े जैसे पुली व पट्टे सही तरीके से आवरण या लोहे की मोटे तार की जाली से ढके होने चाहिएं।

इन मानकों के अतिरिक्त किसान को थ्रैशर खरीदते समय दुर्घटना की स्थिति में प्राथमिक उपचार के लिए प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स आवश्यक दवाओं के साथ अवश्य खरीद लेना चाहिए और यह सदैव मशीन के पास रखना चाहिए।

2. अत्यधिक थकान की दशा में काम न करें : जैसा कि पहले बताया जा चुका है, थ्रैशर पर 73 प्रतिशत दुर्घटनाएँ थकान के कारण होती हैं, इसलिए थकावट होने पर कुछ देर के लिए गहाई को रोक दें। विशेषकर फसल को भरण नाली में डालने का कार्य तो कदापि न करें। इसके अतिरिक्त थ्रैशर भरण नाली की ऊंचाई कोहनी की ऊँचाई के बराबर होनी चाहिए। भरण नाली की ऊंचाई अधिक होने पर हाथों को ऊपर उठाना पड़ता है तथा कम होने पर शरीर को झुकाना पड़ता है और इन दोनों ही दशाओं में शारीरिक थकान अधिक होती है। अविराम काम करने के लिए प्रत्येक 3-4 घंटे के बाद थोड़ा आराम करना चाहिए।

3. थ्रैशर को चलाते समय ध्यान रखने योग्य सावधानियां : खेत में थ्रैशर को चलाते समय निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिएं :

क. किसान अक्सर गहाई के समय धूल-मिट्टी से बचने के लिए गमछा, चुन्नी या अन्य कपड़ा सिर या हाथों पर पर बांध लेते हैं। यह कपड़ा थ्रैशर की धुरों में लिपट सकता है और व्यक्ति को अंदर खींच सकता है और इससे उसकी जान भी जा सकती है। इसलिए ऐसा कदापि नहीं करना चाहिए। अगर ऐसा करने की आवश्यकता पड़े तो सिर पर टोपी और हाथों में रबर या चमड़े के दस्तानों का प्रयोग कर सकते हैं। गहाई करते समय हाथों या गले में चेन या माला आदि पहनने से भी बचना चाहिए। किसान को ढीले कपड़े जैसे कि धोती, साड़ी आदि नहीं पहनने चाहिएं। महिलाएं भी अपने बाल या साड़ी को कस कर बांधें अथवा लपेटें।

ख. फसल में नमी की मात्रा अगर अधिक हो तो भी गहाई नहीं करनी चाहिए। अधिक नमी की मात्रा में ट्रैक्टर के तेल की खपत तो अधिक

चित्र 1: सुरक्षित भरण नाली (गाला) की माप

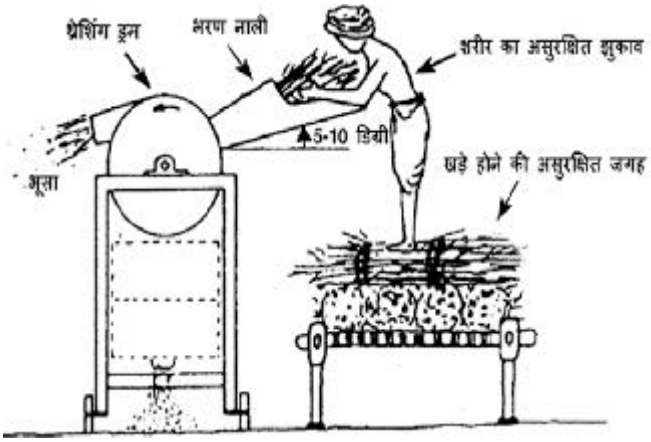

फसल को थ्रैशर में डालने का गलत तरीका

होती ही है, इसके अतिरिक्त फसल के भरण नाली में फंसने की संभावना भी बढ़ जाती है। इसलिए उचित नमी होने पर ही फसल की गहाई करें। यदि फसल भरण नाली में फंस जाए तो फसल को ताकत लगाकर अंदर धकेलने की जगह पहले बाहर खींचें और फिर थोड़ा-थोड़ा करके फसल अंदर डालें। अगर थ्रैशर पर रिवर्स गियर बॉक्स लगा है तो फसल को रिवर्स गियर लीवर का प्रयोग करके भी वापिस निकला जा सकता है।

ग. थ्रैशर पर या नीचे खड़े रहने की जगह समतल और साफ होनी चाहिए। फसल की गठरियों, अनाज के बोरों, थ्रैशर के पहिये आदि पर खड़े होने से शरीर का संतुलन बिगड़ सकता है और मशीन पर गिरने की प्रबल संभावना बनी रहती है इसलिए स्थाई और भार उठाने में सक्षम जगह पर खड़े होकर ही फसल को थ्रैशर में डालें।

घ. फसल को थ्रैशर में डालने का काम कम से कम दो व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए। एक व्यक्ति फसल को नीचे से उठाए और दूसरा उसे भरण नाली में डाले। एक ही व्यक्ति द्वारा दोनों काम किए जाने पर फसल को उठाने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता और जल्दबाजी में दुर्घटना की संभावना बनी रहती है।

ड़. गेहूं के अलावा झाड़ीदार फसलों जैसे कि चना आदि की गहाई करते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

च. चलते थ्रैशर के समय बातें करने से बचना चाहिए। थ्रैशर पर काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति शराब या किसी अन्य प्रकार के नशे से मुक्त होना चाहिए।

छ. अगर थ्रैशर को रात में चलाया जाता है तो दृश्यता के लिए प्रकाश का उचित प्रबंध होना चाहिए।

ज. थ्रैशर के सभी घूमने वाले कलपुर्ज़ों से उचित दूरी बनाए रखें। इन कलपुर्ज़ों को लकड़ी के फ्रेम या लोहे की जाली से ढका भी जा सकता है।

झ. चलते समय थ्रैशर में किसी भी तरह का समायोजन नहीं करना चाहिए। समायोजन करने के लिए थ्रैशर को पहले स्थिर अवस्था में लाना चाहिए।

ञ. भूसा निकासी की दिशा हवा की दिशा के समानांतर होनी चाहिए। भूसे के महीन कणों से बचाव के लिए मुंह और नाक पर मास्क का प्रयोग भी किया जा सकता है।

ट. केवल कुशल और प्रशिक्षित श्रमिकों को ही थ्रैशर पर कार्य करने की अनुमति दें। बच्चों, बूढ़ों और बीमार व्यक्तियों को थ्रैशर पर कदापि काम न करने दें।

ठ. अगर थ्रैशर को चलाने के लिए बिजली की मोटर का प्रयोग किया जा रहा है तो मोटर को सीधे स्टार्ट करने की बजाय स्टार्टर का प्रयोग करें। स्टार्टर, थ्रैशर पर काम करने वाले व्यक्ति की सीधी पहुंच में होना चाहिए ताकि ज़रूरत पड़ने पर मोटर को तुरंत बंद किया जा सके।

4. गहाई के दौरान आग से बचाव : गहाई के समय फसल सूखी हुई होती है इसलिए थोड़ी सी चिंगारी भी भीषण आग का रूप ले सकती है। अत: थ्रैशर को चलाने से पहले यह जांच लेना चाहिए कि इसके कलपुर्ज़े ढीले न हों और इनमें किसी तरह का घर्षण न होता हो। घर्षण के कारण फसल में आग लग सकती है। ट्रैक्टर के धुंआ निकलने वाले पाइप पर भी चिंगारी अवरोधक लगा होना चाहिए। किसानों को खलिहान में हुक्का-बीड़ी का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। चाय-भोजन आदि बनाने के बाद बची आग पर पानी या रेत छिड़क देनी चाहिए।

आग लगने की स्थिति में उसके फैलाव को रोकने के लिए बालू रेत से भरी बाल्टियां साथ में रखें।

दुर्घटना होने की स्थिति में सरकारी आर्थिक सहायता कैसे प्राप्त करें?

अगर दुर्भाग्यवश दुर्घटना हो जाए तो किसान या मज़दूर 'प्रधानमंत्री किसान एवं खेतिहर मज़दूर जीवन सुरक्षा योजना, 2013' के अंतर्गत सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकता है। यह योजना हरियाणा एग्रीकल्चर प्रोड्यूस मार्केट्स एक्ट, 1961 के अंतर्गत चलाई जा रही है। इस योजना में खेती-बाड़ी से संबंधित कार्यों में, खेतों में, गांव में, मंडियों में और ऐसे स्थानों से आवागमन के दौरान हुई दुर्घटनाओं में विशेष आर्थिक सहायता का प्रावधान है।

किसान, खेतिहर मज़दूर और मंडियों में काम करने वाले मज़दूर इस योजना से आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकते हैं। यह योजना 10 साल से ज़्यादा और 65 साल से कम उम्र वाले व्यक्तियों पर ही लागू होती है। इस योजना में अधिकतम 5 लाख रुपए तक क्षतिपूर्ति का प्रावधान है। इस योजना के अंतर्गत सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए इस योजना का निर्धारित फॉर्म जो कि हरियाणा स्टेट एग्रीकल्चर मार्केटिंग बोर्ड की वेबसाइट पर भी उपलब्ध है, भर कर आवश्यक दस्तावेजों के साथ उस ज़िला से संबंधित मार्केट कमेटी में जमा करवाया जा सकता है। यह कार्य दुर्घटना होने के 2 माह पूरे होने से पहले किया जाना आवश्यक है।

(पृष्ठ 21 का शेष)

पानी में 4 से 5 मिनट तक रखें। फलों को फटने से बचाएं। फिर आंवले के फलों को साफ मलमल के कपड़े पर फैलाएं। जिससे फालतू पानी बाहर आ जाए। इन्हें अब स्टील के पतीले में डालें।

6. चाशनी बनाने के लिए एक किलोग्राम फल में सवा किलो चीनी, 600 से 700 मि.ली. पानी और 2 से 4 ग्राम सिट्रिक एसिड डालें और उबालें। फिर चाशनी में जमी मैली परत को मलमल के कपड़े से छान लें।
7. चाशनी को अगले दिन 15 से 20 मिनट तक गाढ़ा कर लें और फलों पर डालें।
8. दो दिन बाद चाशनी को फलों से निकालें। 10 से 15 मिनट उबालने के बाद दो तीन तार की चाशनी तैयार हो जाएगी। फलों को इसी चाशनी में 4-5 दिन तक रहने दें।
9. चाशनी को शहद जितना गाढ़ा होने दें। अब इसे कीटाणुरहित बर्तन में डालकर सील बन्द करें।

कैण्डी

- मुरब्बा और कैण्डी एक ही श्रेणी के खाद्य पदार्थ हैं, जिन्हें शक्कर द्वारा परिरक्षित किया जाता है।
- कैण्डी को शक्कर के गाढ़े घोल से निकाल कर सुखाया जाता है, वहीं मुरब्बा 70 प्रतिशत शक्कर के घोल में परिरक्षित किया जाता है।
- सेब, आंवला और बेलगिरी के मुरब्बे को चाशनी में दो सप्ताह तक रखें। उसके बाद चाश्नी से निकाल कर ट्रे में फैला दें व 50 से 60 डिग्री तापमान पर सुखाएं। कैण्डी तैयार होने पर एल.डी.पी.ई. की थैलियों में सीलबन्द कर भण्डारण करें।

सौर ऊर्जा संयंत्र से अधिकतम लाभ : कैसे प्राप्त करें

✎ **विनोद कुमार एवं मुकेश जैन**
फार्म मशीनरी और पावर इंजीनियरिंग विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सौर ऊर्जा संयंत्र तकनीक दिन-प्रतिदिन सुगम सुलभ होने के कारण न केवल लोकप्रिय होती जा रही है अपितु किसानों के लिए फसल की लागत कम करने का महत्वपूर्ण साधन बन गयी है। किसान अपने खेत में सौर ऊर्जा संयंत्र लगा कर भविष्य के लिए एक सुरक्षित निवेश भी कर सकते हैं। हरियाणा सरकार समय-समय पर किसानों को यह संयंत्र लगवाने के लिए उचित सब्सिडी भी प्रदान करती है। सब्सिडी और सस्ती होने के कारण बहुत सारे किसानों ने यह संयंत्र लगवा लिया है।

जिन किसानों ने सौर ऊर्जा संयंत्र लगवा लिया है, उनके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे इस संयंत्र को खरीदने में किये गए निवेश पर अधिकतम लाभ प्राप्त करें। इसके लिए सौर ऊर्जा संयंत्र की उचित स्थापना और रख-रखाव बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। खेत में सौर संयंत्र स्थापित करने की अवधि में थोड़ा सा ध्यान रखने से 20 से 35 प्रतिशत तक अधिक सौर बिजली प्राप्त की जा सकती है। यह सौर ऊर्जा संयंत्र की लागत भी कम कर देता है।

सौर पैनलों को स्थापित करते समय अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. सोलर पैनलों की दिशा और झुकाव

अधिकतम बिजली प्राप्त करने के लिए इस प्रणाली की दिशा और झुकाव ऐसा होना चाहिए कि यह अधिकतम सूर्यताप प्राप्त करें। यही कारण है कि सूरज की किरणों को सौर पैनल पर लंबवत (90 डिग्री कोण पर) पड़ना चाहिए।

सौर पैनलों की दिशा : सामान्य तौर पर हरियाणा में, जो कि पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में स्थित है, सौर पैनल की दिशा दक्षिण की तरफ होनी चाहिए। हालांकि, सौर पैनलों को उनकी बिजली उत्पादन क्षमता कम किये बिना, दक्षिण के 45 डिग्री पूर्व या पश्चिम की तरफ तक भी लगाया जा सकता है। दक्षिण दिशा का सही पता करने के लिए आप दिशा सूचक यंत्र का भी प्रयोग कर सकते हैं। अगर दिशा सूचक यंत्र उपलब्ध नहीं है तो आप आजकल हर किसी के पास उपलब्ध स्मार्टफोन का भी प्रयोग कर सकते हैं।

सौर पैनलों का झुकाव : झुकाव वह कोण है जो सौर पैनल क्षैतिज के साथ बनाता है। दिशा के बाद यह दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक है जो सौर ऊर्जा संयंत्र से पैदा होने वाली बिजली की मात्रा को प्रभावित करता है। कोई भी सौर पैनल ज़मीन के समानान्तर नहीं होना चाहिए। सौर पैनलों को अपने सौर ऊर्जा संयंत्र के डिज़ाइन के अनुसार निम्नलिखित नियमानुसार झुकाव देना चाहिए :

स्थिर सौर ऊर्जा संयंत्र में पैनलों का झुकाव

क. स्थिर सौर ऊर्जा संयंत्र का झुकाव : यदि आप एक स्थिर सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित कर रहे हैं तो सौर पैनल को क्षैतिज दिशा के साथ एक कोण बनाना चाहिए जो उस स्थान के अक्षांश के बराबर हो।

हरियाणा राज्य में अक्षांश का मान 29 डिग्री होता है। इसलिए आप यह सुनिश्चित कर लें कि आपका सौर पैनल क्षैतिज के साथ 29 डिग्री का झुकाव बनाता हो।

ख. लचीले सौर ऊर्जा संयंत्र का झुकाव : अपने सौर ऊर्जा संयंत्र से अधिकतम बिजली प्राप्त करने के लिए, आपको सलाह दी जाती है कि आप खेत में एक लचीली सौर ऊर्जा प्रणाली स्थापित करें। इस प्रणाली में, आप मौसम के अनुसार सौर पैनलों के झुकाव को बदल सकते हैं। आमतौर पर सर्दियों में, गर्मियों की तुलना में सौर पैनलों के झुकाव को अधिक रखा जाता है। लचीले सौर ऊर्जा संयंत्र में आप झुकाव को निम्नलिखित दो तरह से बदल सकते हैं :

वर्ष में दो झुकाव विधि : यदि आप अधिक सौर ऊर्जा प्राप्त करने के लिए वर्ष में दो बार सौर पैनलों के झुकाव को समायोजित करने जा रहे हैं, तो इसे इस प्रकार करें :

ऋतु	झुकाव बदलने की तिथि	क्षैतिज के साथ झुकाव
ग्रीष्मकाल	30 मार्च	7 डिग्री
शरदकाल	12 सितम्बर	45.5 डिग्री

साल में चार झुकाव विधि : अगर आप साल में चार बार सोलर पैनलों का झुकाव बदल सकते हैं तो आप इससे अधिक मात्रा में अपने सौर पैनलों से बिजली पैदा कर सकते हैं। साल में चार बार आप सोलर पैनलों के झुकाव को इस तरह से बदल सकते हैं :

ऋतु	झुकाव बदलने की तिथि	क्षैतिज के साथ झुकाव
ग्रीष्मकाल	18 अप्रैल	3 डिग्री
वसंत	24 अगस्त	27 डिग्री
शरदकाल	7 अक्तूबर	50 डिग्री
पतझड़	5 मार्च	27 डिग्री

2. सौर ऊर्जा संयंत्र का छाया से दूर होना

सौर पैनलों पर किसी भी प्रकार की कोई छाया नहीं पड़नी चाहिए। अगर सौर पैनल के एक छोटे से हिस्से पर भी कोई छाया पड़ती है तो इससे इसका बिजली उत्पादन कम हो जाता है। सौर पैनल पर छायादार हिस्से में तार की प्रतिरोधकता में वृद्धि हो सकती है। परिणामस्वरूप, यह गर्म हो सकता है और अंततः उन क्षेत्रों को जला सकता है। इस तरह के नुकसान को वारंटी के तहत भी कवर नहीं किया जा सकता है। इसलिए सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित करते समय छाया के बारे में पूर्ण सावधान रहना चाहिए। यदि छाया को टाला नहीं जा सकता है तो सौर ऊर्जा संयंत्र लगवाते समय आवश्यकता अनुसार सौर पैनलों के आकार या संख्या को बढ़ाया जाना चाहिए।

3. सौर पैनलों के आसपास वायु संचालन (तापमान नियमन)

सौर पैनलों के आसपास वायु संचालन एक महत्वपूर्ण कारक नहीं है, जब तक तापमान 25 डिग्री सेल्सियस से कम रहता है। लेकिन भारत जैसे देशों में, जहां गर्मियों में तापमान बढ़ता है, यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक बन जाता है। उच्च तापमान पर, सौर संयंत्र का बिजली उत्पादन कम हो जाता है। 25 डिग्री सेल्सियस से ऊपर के तापमान में, प्रत्येक डिग्री वृद्धि के लिए, संयंत्र का उत्पादन लगभग 0.25 प्रतिशतसे 0.5 प्रतिशत

सौर पैनलों की साफ-सफाई

तक कम हो जाता है।

विशेषकर दक्षिण हरियाणा में, जहां गर्मियों में सामान्य तापमान 40 डिग्री सेल्सियस तक होता है, इसके बिजली उत्पादन में 4 से 8 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। इसलिए सौर पैनलों को स्थापित करते समय इस कारक को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। तापमान कम रखने के लिए, सौर मंडल के आसपास वायु का संचालन अच्छा होना चाहिए। हवा के अच्छे आवागमन के लिए ऊंचे भवन, पेड़, बिजली के खम्बे आदि के पास सौर संयंत्र कदापि स्थापित न करें।

4. विद्युत केबल की धातु, मोटाई और लंबाई

बिजली केबल, जो सभी पैनलों को पानी पंप से जोड़ती है, की गुणवत्ता को अनदेखा नहीं करना चाहिए। जैसा कि हम सभी जानते हैं, तांबा बिजली का सबसे अच्छा सुचालक है, इसलिए हमें एल्यूमीनियम या लोहे के तार के अतिरिक्त शुद्ध तांबे से बनी विद्युत केबल का उपयोग करना चाहिए।

विद्युत् केबल का अगला महत्वपूर्ण बिंदु उसकी मोटाई और लंबाई है। जहां तक संभव हो, केबल की मोटाई अधिक से अधिक और लंबाई कम से कम होनी चाहिए। इससे तार में बिजली की क्षति कम होती है। अगर संभव हो तो बिजली की केबल जिसमें बड़ी संख्या में पतली तार हो, को ही खरीदना चाहिए। केबल में एकल तार या कम संख्या वाले तारों से बिजली की क्षति अपेक्षाकृत अधिक होती है।

5. नियमित साफ-सफाई

सौर पैनलों की नियमित रूप से साफ-सफाई करना भी बहुत आवश्यक है। अगर आपके क्षेत्र में धूल अधिक उड़ती है तो पैनलों की सफाई लगातार करते रहना चाहिए। यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सौर किरणों का अवशोषण गंदगी, पक्षियों के मल इत्यादि द्वारा कम न हो।

कुछ तौर-तरीके हैं जिनसे आप अपने पैनलों को साफ कर सकते हैं। सबसे पहले (और सबसे आसान) तरीका है- साफ पानी द्वारा धुलाई। यदि पैनलों को अधिक सफाई की आवश्यकता हो तो एक लंबे बांस की लकड़ी पर एक नरम मखमली या सूती कपडा बांध लें और हल्के साबुन के पानी के साथ साफ करें। सौर पैनल के काँच पर कोई खरोंच न पड़ने दें। अगर सफाई के लिए सीढ़ी का प्रयोग करना पड़े तो पहले इसे अच्छे से स्थापित करें।

सिंचाई : साधन, आवश्यकता एवं विधियाँ

✎ **नरेंद्र कुमार, अमनदीप सिंह एवं प्रमोद शर्मा**
कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत की जनसंख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन उपलब्ध करवाना ही हमारी सबसे बड़ी प्राथमिकता है। अच्छी पैदावार के लिये फसलों में समय पर सिंचाई करना अनिवार्य है। सिंचाई के लिये जल का प्रमुख स्त्रोत वर्षा है। किन्तु वर्षा पर निर्भर रहना बुद्धिमानी नहीं है। क्योंकि हमारे देश में वर्षा बड़ी अनिश्चित है। इसलिए सिंचाई हेतु कृत्रिम साधनों का उपयोग किया जाता है। कृत्रिम साधनों में कुएं, तालाब, झरने एवं नहरें इत्यादि प्रमुख हैं। हमारे देश की भौगोलिक सरंचना एक-सी नहीं है। सभी प्रदेशो में सिंचाई के साधन अलग हैं। उदाहरण के लिये उतरप्रदेश और पंजाब में वर्ष भर बहने वाली नदियां हैं। तो इन जगहों में सिंचाई का प्रमुख साधन नहरें हैं। मध्यप्रदेश और राजस्थान में सिंचाई कुओं से की जाती है। दक्षिण भारत में सिंचाई तालाबों से की जाती है।

सिंचाई के साधन

तालाब : तालाब दो प्रकार के होते हैं : कृत्रिम तालाब एवं मानव निर्मित तालाब तथा प्राकृतिक तालाब। कृत्रिम तालाब मानव निर्मित होते हैं। इन तालाबों की पानी संचयन की क्षमता आवश्यकतानुसार निर्धारित की जाती है। इन्हें मशीनों के उपयोग से खोदा जाता है। वर्षा का बहाव जिस तरफ होता है, वो जगह इन तालाबों को बनाने के लिये उपयुक्त होती है। दक्षिण भारत में अधिकतर सिंचाई तालाबों से की जाती है। भोपाल, ग्वालियर, अलवर तथा उदयपुर में बड़े-बड़े तालाब हैं। प्राकृतिक तालाब वो तालाब होते हैं जो भौगोलिक सरंचना में अपने आप ही तैयार होते हैं। इन तरह के तालाबों की संचयन क्षमता कम या अधिक नहीं कर सकते। ये तालाब उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ भूमि ऊबड़-खाबड़ और पथरीली हो।

नलकूप : आजकल कुओं और तालाबों की तुलना में अब लोग नलकूपों को अधिक महत्व देने लगे हैं। आज लगभग हर गांव में सरकारी और गैर सरकारी नलकूप पाये जाते हैं। ये बिजली या डीज़ल इंजनों द्वारा चलते हैं। ये सिंचाई के लिए सुगम और सरल साधन हैं। सरकार इन नलकूपों को देश में लाखों की संख्या में लगा रही है।

कुएं : कुओं को प्राचीन काल से ही सिंचाई के साधन रूप में प्रयोग किया जाता है। पथरीले क्षेत्रों में कुएं खुदवाने में धन का अधिक खर्चा होता है। कुओं के माध्यम से अधिक सिंचाई गंगा के क्षेत्रों में की जाती है। कुओं से पानी किसी ईजन या किसी और माध्यम से निकाल कर खेतों में लगाया जाता है।

नहरें : नहरें सिंचाई का प्रमुख साधन हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में नहरों का विशेष महत्व है। भारत में मुख्यत: तीन प्रकार की नहरों का इस्तेमाल किया जाता है :

स्थाई नहरें : स्थाई नहरों में साल भर पानी रहता है तथा इसका उपयोग साल भर किया जाता है। इन नहरों का स्त्रोत वे नदियां हैं जो पूरे वर्ष पानी से भरी रहती हैं।

बरसाती नहरें : ये नहरें सिंचाई के लिए विशेष लाभकारी नहीं होती क्योंकि इनमें बरसात के समय ही पानी रहता है। शेष समय ये नहरें सूखी रहती हैं।

(शेष पृष्ठ 32 पर)

गांवों को प्रदूषण से बचाने के उपाय

- **दिवेश चौधरी, ममता एवं अनिल कुमार**
कृषि मौसम विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

प्रदूषण की समस्या मनुष्य के भौतिकवादी दृष्टिकोण, विज्ञान और तकनीक की निरंतर प्रगति, बढ़ते औद्योगीकरण और शहरीकरण, मोटर वाहनों की बढ़ती संख्या, वनों के काटे जाने, जनसंख्या में हो रही बेतहाशा वृद्धि, गरीबी और अशिक्षा आदि के कारण अति विकराल होती जा रही है जिससे वनस्पतियों, जीव जन्तुओं और यहां तक कि स्वयं मनुष्य का जीवन भी संकटग्रस्त होता जा रहा हैं। यद्यपि प्रदूषण की समस्या अभी बड़े शहरों तक ही अधिक विकराल रूप में फैली है। ग्रामीण क्षेत्रों में यदि अभी से कुछ सावधानियां बरती जाएं तो निश्चित ही इसका प्रकोप कम करने में सहायता मिल सकती है, जैसे : प्लास्टिक की थैली, पाऊच आदि का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। इसके कारण पाईप/नालियां आदि रुक जाती हैं। ये खेतों, कूड़े एवं खाद के ढेरों में दब जाने पर भी गल नहीं पातीं तथा मिट्टी को प्रदूषित करती हैं। अत: यथासम्भव इनका कम से कम प्रयोग करना चाहिए।

कुंओं, तालाबों, नदियों आदि को दूषित होने से बचाने के प्रयास होने चाहिएं। कुंओं के पानी को जल प्रदूषण से बचाने के लिए उसमें कूड़ा करकट नहीं पहुंचे, उसका ऐसा प्रबंधन किया जाना चाहिए। माह में एक बार उसमें पोटैशियम परमैंगनेट अथवा ब्लीचिंग पाऊडर डालने से कुएं के पानी को शुद्ध रखा जा सकता है।

घर/गांवों से निकलने वाले दूषित जल, मलमूत्र आदि को नदियों में बहाने और उसी जल को गांववासियों अथवा पशुओं द्वारा प्रयोग किये जाने पर बीमारियों को बढ़ावा मिलता है। अत: इस प्रकार की गंदगी को सीधे नदियों एवं तालाबों में नहीं बहाना चाहिए। घरों से निकलने वाले पानी को गलियों, सड़कों पर फैलने के लिए नहीं छोड़ना चाहिए। यथासम्भव उसे गांव से बहार निकालने के प्रयास किये जाने चाहिएं। प्रत्येक घर में ऐसे पानी के निस्तारण के लिए सोखने वाला गड्ढा बनवाया जाना चाहिए।

आटा चक्की, अन्य छोटे एवं घरेलू उद्योगों में काम आने वाली मशीनें जो विशेष रूप से अधिक आवाज़ करती हैं को आवासीय क्षेत्रों से दूर लगाया जाना चाहिए अन्यथा इनसे निकलने वाली तीव्र ध्वनि से ध्वनि प्रदूषण होगा जो संबंधित लोगों को प्रभावित करेगा। त्योहार, उत्सवों, पूजापाठ में अधिक शोर करने वाले लाऊड स्पीकरों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे भी ध्वनि प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है।

मृत पशुओं के शव आदि गांव के आसपास नहीं डालने चाहिएं बल्कि गांव से यथासंभव दूर डालने की व्यवस्था की जानी चाहिए, अन्यथा इनके सड़ने से फैलने वाली दुर्गन्ध से गांव में बीमारियां फैल सकती हैं।

उत्सवों एवं त्योहार आदि पर विशेष रूप से अधिक ध्वनि वाले पटाखों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इनकी तीव्र ध्वनि से लोग बहरे तक हो सकते हैं। किसी भी प्रकार की आतिशबाजी ध्वनि एवं वायु प्रदूषण दोनों का कारण बनती है। रेडियो, टी. वी. और रिकॉर्ड प्लेयर्स आदि को ऊंची आवाज़ मे नहीं चलाना चाहिए। मोटर साइकिल, ट्रैक्टर आदि में तीव्र ध्वनि वाले हॉर्न नहीं लगवाने चाहिएं। इससे भी ध्वनि प्रदूषण बढ़ता है।

खाना बनाने में गोबर के कंडों का प्रयोग काफी प्रदूषणकरी होता है इनके जलने से कई हानिकारक गैसें निकलती हैं। इनके बदले आजकल छोटे गोबर गैस संयंत्रों को गांवों में बनवाया जा सकता है। ये कम कीमत में बनकर तैयार हो जाते हैं और इन पर सरकारी अनुदान की भी व्यवस्था है। इनमें खाना पकाने के लिए गैस, खेती के लिए कम्पोस्ट खाद तथा रोशनी की सुविधा भी मिलती है। घरों में खाना पकाने के लिए उपयोग किये जाने वाले साधारण चूल्हे के स्थान पर धुआं रहित चूल्हे का प्रयोग करना चाहिए। सरकार इसे रियायती दरों पर उपलब्ध भी करवाती है।

गांवों में प्रयोग किये जाने वाले ट्रैक्टर, मोटर, साइकिल, स्कूटर और डीज़ल पम्प आदि को समय-समय पर जांचना चाहिए जिससे उनसे निकलने वाले धुएं की मात्रा और ध्वनि को कम किया जा सके। सस्ते डीज़ल व पेट्रोल की बचत करने के साथ-साथ वायु एवं ध्वनि प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है।

अपने घरों के आसपास कूड़ा-कचरा नहीं फैलाना चाहिए। घरों के कूड़ा-करकट को घरों के सामने या सड़कों पर न डालकर उपयुक्त स्थान पर डालने की व्यवस्था की जानी चाहिए। गांव के आसपास खुले में शौच करने की प्रवृत्ति को भी रोका जाना चाहिए। इनसे वायु प्रदूषण होता है। वर्तमान में कम खर्च में स्वच्छ शौचालय बनवाए जा सकते हैं। अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रामीण विकास अधिकारी एवं ग्राम पंचायत अधिकारी से सम्पर्क किया जा सकता है।

पैदावार बढ़ाने, भंडारण के समय अन्न खराब होने से बचाने की दृष्टि से खेतों में प्रयोग किये जाने वाले खाद, उर्वरक एवं कीटनाशकों का निर्धारित मात्रा अनुसार प्रयोग किया जाना चाहिए। इनके अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी तो दूषित होती ही है, इससे अतिरिक्त पैदा होने वाले खाद्यान, फल, सब्जियां आदि भी प्रदूषित हो जाते हैं। जिनके प्रयोग से लोगों को कैंसर, श्वांस रोग, अल्सर एवं त्वचा रोग जैसी भयंकर बीमारी हो सकती है।

प्रदूषण रोकथाम में वृक्ष विशेष रूप से सहायक होते हैं। अत: वृक्ष की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। 'अखिल भारत विज्ञान कांग्रेस' के अनुसार एक वृक्ष से उसकी 50 वर्ष की औसत आयु में ऑक्सीजन, प्रोटीन, वायु शुद्धिकरण, भूमिरक्षा, छाया, जलवायु से नियमितीकरण के रूप में प्रत्यक्ष रूप में लगभग 16 लाख रुपये के लाभ प्राप्त होते हैं।

जब तक सम्भव हो, धूम्रपान की आदत से बचना चाहिए और यदि इसकी लत पड़ भी गयी है तो इससे बच पाना सम्भव नहीं है तो अपने परिवार के सदस्यों तथा दूसरे लोगों के समक्ष धूम्रपान नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे धूम्रपान न करने वालों के स्वास्थ्य को भी खतरा होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति के पास धूम्रपान करने से भी उसे धुएं से 30 प्रतिशत हानि होती है क्योकि सांस से बीड़ी, सिगरेट और तम्बाकू का धुआं, धूम्रपान नहीं करने वाले व्यक्ति के शरीर में भी प्रवेश करता है।

वायु, भूमि, जल एवं ध्वनि आदि के प्रदूषण से रोकथाम के उपायों को यथासम्भव अधिक से अधिक लोगों को अवगत कराने का प्रयास किया जाना चाहिए और इसे कम करने के लिए तथा लोगों को जागरूक करने के लिए सम्बंधित लोगों तथा सम्बंधित संस्थानों का यथासम्भव सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में भी उक्त सावधानियां अपनाई जाएं तो वायु, जल, ध्वनि और भूमि प्रदूषण को बहुत अच्छी तरह से रोका जा सकता है। यह सत्य है कि अभी तक ग्रामीण क्षेत्रो में प्रदूषण की समस्या उत्पन नहीं हुई है, लेकिन जिस अनियंत्रित तथा अनियमित तरीके से गांवों का विकास हो रहा है और शहरों जैसी चकाचौंध को फैलाने के लिए जो सरकारी संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रयास हो रहे हैं, उनमें ऐसा आभास हो रहा है कि अब गांव भी बहुत जल्द प्रदूषण की भयंकर बीमारी से ग्रस्त हो जाएंगे। अत: यह आवश्यक है कि अब सरकारी तथा संस्थागत प्रयासों के साथ-साथ पंचायतों द्वारा सामुहिक रूप से तथा व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से इस दिशा में प्रयत्न किये जाने चाहिएं। इस संबंध में लोगों को शिक्षित करने के लिए जन साधारण, जन सहयोग, जन चेतना और जन सहभागिता विकसित करनी आवश्यक है तभी गांवों को निकट भविष्य में संभावित प्रदूषण की विभीषिका से बचाना संभव हो सकेगा।

Drip Irrigation for Horticultural Crop Production

- **Sumit Deswal and Manender Singh**
Department of Horticulture
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Irrigation's most basic function is to provide water where and when it is needed. Irrigation is not provided directly to plants, but to the root zone of the soil. The root zone functions as a reservoir and is highly dependent on plant type, soil type, soil compaction and other factors. Precise and regulated application of irrigation water and plant nutrients at low pressure and frequent intervals through drippers/emitters directly into the root zone of the plant with the help of a close network of pipes is known as drip irrigation system. Drip irrigation is one of the advanced methods of irrigation by which only required amount of water can be supplied to root zone. It is a very efficient method of applying water and nutrients to crops. Thus, an optimum soil-water-air proportion can be maintained for a good growth, yield and quality of plant and fruit of vegetables. In early 1940's, drip irrigation was initiated by an Israeli engineer Syncha Blass to apply water in small quantities - drop by drop. Drip irrigation is gaining popularity due to the diminishing water resources. It's highly useful for vegetables such as; tomato, pepper, cucumber, okra, garden pea, cauliflower, cabbage, and also other horticultural crops. The horticultural crops suitable for drip irrigation are given in Table 1.

In this method, water is dripped on to the soil at a very low rate (2-20 liters/hour) from ma system of small diameter plastic pipes fixed with outlets called emitters or drippers. Water is applied close to the plants so that only part of the soil in which the roots grow is drenched. This will allow the watering to be restricted close to the consumptive use of the plants. The application of water in drip irrigation is more frequent (every 1-4 days) than with other methods. This provides a favourable moisture level in the soil in which plants can flourish. For the successful production of drip irrigation system, it is necessary to design the layout of the system technically feasible and economically viable. In designing of the system, the parameters regarding the agro-climatic conditions like soil, water, and climate should be considered for accurate monitoring of drip irrigation system as and when required. Crop yields can be increased through improved water and fertility management and reduced disease and weed pressure. When drip irrigation is used with polyethylene mulch, yields can increase even further. In vegetable crops, a surface method of drip irrigation is used as it can be rolled back when irrigation is not required.

Table 1: Horticultural Crops Suitable for Drip Irrigation System

Orchard crops	Grapes, banana, pomegranate, orange, citrus, mango, lemon, custard apple, sapota, guava, pineapple, coconut, cashewnut, papaya, aonla, litchi, watermelon, muskmelon, etc.
Vegetables	Tomato, chilly, capsicum, cabbage, cauliflower, onion, okra, brinjal, bitter gourd, ridge gourd, cucumber, peas, spinach, pumpkin, etc.
Cash crops	Sugarcane, cotton, arecanut, strawberry, etc.
Flowers	Rose, carnation, gerbera, anthurium, orchids, jasmine, dahilia, marigold, etc.
Plantation	Tea, rubber, coffee, coconut, etc.
Spices	Turmeric, cloves, mint, etc.
Oil seed	Sunflower, oil palm, groundnut, etc.
Forest crops	Teakwood, bamboo, etc.

Advantages of drip irrigation

- Lower-volume water sources can be used because trickle irrigation may require less than half of the water needed for sprinkler irrigation.
- Lower operating pressures mean reduced energy costs for pumping.
- High levels of water-use efficiency are achieved because plants can be supplied with more precise amount of water.
- Disease pressure may be less because plant foliage remains dry.
- Labour and operating costs are generally less and extensive automation is possible.
- Water applications are made directly to the plant root zone. No applications are made between rows or other non-productive areas, resulting in better weed control and significant water savings.
- Field operations, such as harvesting, can continue during irrigation because the areas between rows remain dry.
- Fertilizers can be applied efficiently.
- Irrigation can be done under a wide range of field conditions.
- Compared to sprinkler irrigation, soil erosion and nutrient leaching can be reduced.

Response of Different Crops to Drip Irrigation System

Crops	Water saving (%)	Increase in yield (%)
Banana	45	52
Cauliflower	68	70
Chilly	68	28
Cucumber	56	48
Grapes	48	23
Sugarcane	45	45
Sweet lime	50	99
Tomato	61	50
Watermelon	42	60

Disadvantages and limitations of drip irrigation

- Initial investment costs per acre may be higher than those of other irrigation options.
- Management requirements are somewhat higher. Delaying critical operation decisions may cause irreversible crop damage.
- Frost protection is not possible with drip systems; if it is needed, sprinkler systems are necessary.
- Rodent, insect and human damage to drip lines are potential sources of leaks.
- Water filtration is necessary to prevent clogging of the small emitter holes.
- Compared to sprinkler irrigation, water distribution in the soil is restricted.

Because vegetables are usually planted in rows, drip tape with pre-punched emitter holes is used to wet a continuous strip along the row. Most vegetables are grown for only one season, so thin-walled disposable tape (8 to 10 mil thick) is generally used for only one season. Less emphasis is placed on buried mainlines and sub-mainlines to allow the system to be dismantled and moved from season to season. Costs may be high, so you should develop a functional system that allows for maximum production with minimal costs. You may purchase an entire system from a drip irrigation dealer or adapt your own components. Proper system design will help you avoid problems later. Irrigation water may come from wells, ponds, lakes, rivers, streams or municipal water suppliers. Groundwater is fairly clean and may only require a screen or disk filter to remove particles that can clog emitters. However, a water quality test should be conducted to check for precipitates or other contaminants before a drip system is installed.

Major components of drip irrigation system

The drip irrigation system consists of a network of pipes with a suitable emitting device. These benefits are only possible when a drip irrigation system is properly designed, managed and maintained. Irrigation system design is complex and is beyond the scope of this publication. You should consult with a qualified agricultural engineer or irrigation equipment dealer to design your drip irrigation system. However, by understanding the various design factors, you can help ensure that your drip irrigation system is properly designed and operated. A large typical drip irrigation system is presented in Figure 1.

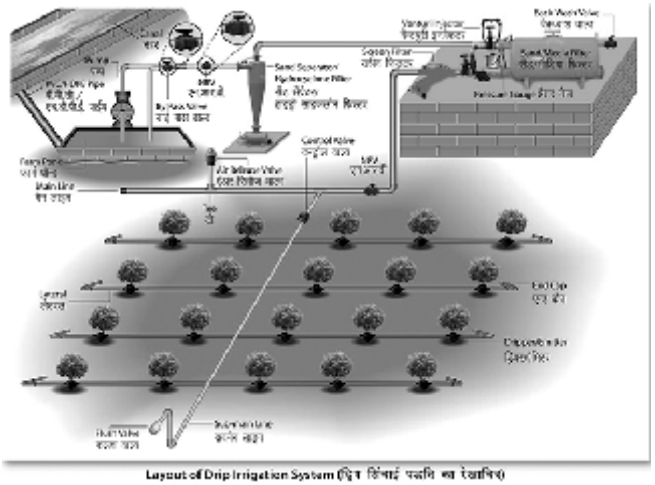

Layout of Drip Irrigation System (ड्रिप सिंचाई पद्धति का रेखाचित्र)

The pump front unit takes water from the source and provides the right pressure for delivery into the pipe system.

The control head consists of valves to control the discharge and pressure in the entire system. It may also have filters to clear the water.

Filtration system : Some control head units contain a fertilizer or nutrient tank to clean the water. Common types of the filter include screen filters and graded sand filters which remove fine material suspended in the water.

Fertilizer tank/venturi slowly add a measured dose of fertilizer into the water during irrigation. This is one of the major advantages of drip irrigation over other methods.

Mainlines, submains and laterals supply water from the control head into the fields. They are usually made from PVC or polyethylene hose and should be buried below ground because they easily degrade when exposed to direct solar radiation. Lateral pipes are usually 13-32 mm diameter.

Emitters or drippers are devices used to control the discharge of water from the lateral to the plants. They are usually spaced more than 1 metre apart with one or more emitters used for a single plant such as a tree. For row crops, more closely spaced emitters may be used to wet a strip of soil. Many different emitter designs have been produced in recent years. The basis of design is to produce an emitter which will provide a specified constant discharge which does not vary much with pressure changes and does not block easily.

Fertigation : Fertigation is a method of fertilizer application in which fertilizer is incorporated within the irrigation water by the drip system. In this system, fertilizer solution is distributed evenly in irrigation. The availability of nutrients is very high therefore the efficiency is more. In this method, liquid fertilizer, as well as water soluble fertilizers, are used. By this method, fertilizer use efficiency is increased from 80 to 90 percent.

Most plant nutrients can be applied through irrigation systems. Nitrogen is the most commonly used plant nutrient. Naturally occurring nitrogen (N_2) is a diatomic molecule which makes up approximately 80% of the earth's atmosphere. Most plants cannot directly consume diatomic nitrogen, therefore nitrogen must be contained as a component of other chemical substances which plants can consume. Commonly anhydrous ammonia, ammonium nitrate, and urea are used as bioavailable sources of nitrogen. Other nutrients needed by plants include phosphorus and potassium. Like nitrogen, plants require these substances to live but they must be

contd. on page 32

Peri-urban Agriculture in Haryana : Need, Strategies and Challenges

- **Rajesh Lather, Vandna and Gurnam Singh**
Krishi Vigyan Kendra, Panchkula
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Peri-urban Agriculture may also be known as peri-urban farming or gardening. It is a practice of doing agriculture in or around a town or city indicating areas along the urban-rural continuum. The fruit, vegetable, aromatic and medicinal herbs, ornamental plants, beekeeping, dairy and fishery production may easily be carried out in the adjoining areas of National Capital and State Capital regions especially in response to the daily demand of consumers within cities like Chandigarh, Panchkula, Delhi, Faridabad, Gurugram, etc. Often the more perishable and relatively high-valued products and by-products are favoured. The importance of peri-urban agriculture is increasingly being recognized by international organizations like UN-Habitat and FAO (World Food and Agriculture Organization) due to contributions of peri-urban agriculture to urban food security and nutrition.

Need and importance : The rapid urbanization in the past years in Haryana and increasing population with exponential rate resulted into the decreased cultivable land. The demand for fresh vegetables, fruits, aromatic and medicinal herbs, ornamental plants and milk products is constantly increasing in urban areas and peri-urban agriculture can fulfill this demand ensuring food security and can contribute to price stabilization through the development of important local food production centres of the diversified food system. This will prevent the conversion of agricultural land near urban areas into cities and towns. Degraded open spaces and vacant land adjacent to the cities are often used as informal waste dumpsites and are a source of health problems. Peri-urban agriculture contributes to disaster risk reduction and adaptation to climate change by reducing runoff, keeping flood plains free from construction, reducing urban temperatures, capturing dust and carbon dioxide. Growing fresh food close to consumers reduces energy spent in transport, cooling, processing and packaging. This will reduce the burden on transport and help in reducing greenhouse gas emissions from cold storage by increasing carbon sequestration. Peri-urban agriculture may be an integral part of the urban ecological system and can play an important role in the urban environmental management system. For most of the cities, the disposal of wastes has become a serious problem. The urban waste may be used as compost and sewerage water after treatment as irrigation for this peri-urban agriculture, which otherwise increasing air and water pollution in densely populated cities. This will also help in creating attractive employment option for poor urban residents and slum dwellers as labourers. In addition, compost-making initiatives create employment and provide income for the urban poor. Next to food security, peri-urban agriculture contributes to local economic development, poverty alleviation and social inclusion of the urban poor and women in particular.

Economic impacts : Growing food reduces the load on food import and saves household expenditures on food and poor people in these cities generally spend a substantial part of their income on food. Beside this, peri-urban agriculture stimulates the development of related micro-enterprises, the production of necessary agricultural inputs and the processing, packaging and marketing of outputs. Special attention is needed for the strengthening of the linkages between various types of enterprises in clusters or chains. The municipality and urban authority can play a crucial role in stimulating micro-enterprise development related to peri-urban agriculture like providing marketplaces for peri-urban growers, etc.

Social impacts: Peri-urban agriculture may function as an important strategy for poverty alleviation and social integration particularly, among the groups such as orphans, disabled people, women, recent immigrants without jobs, or elderly people, with the aim to integrate them more strongly into the urban network and to provide them with a decent livelihood so that they may feel enriched by the possibility of working constructively.

Challenges : There are chances of competition for resources with other urban sectors, aspects of agriculture that may be unpleasant for city dwellers and quality of inputs must be monitored. Wise resource allocation is a quintessential struggle for agriculture, and is especially greater for peri-urban agriculture than rural agriculture due to its proximity to greater number of people and to existing stresses on the urban environment. Peri-urban agriculture uses land, water, labour and energy that might be used by other urban economic sectors.

- Some aspects arisen due to peri -urban agriculture may be unpleasant for urban residents, including smells, pollution and disease.
- If dairy is promoted in proximity of cities, the management of animal waste can be challenging, since manure may contain chemicals and heavy metals unsuitable for use as fertilizer and may even be hazardous.
- Pathogens may be harmful from live animals in close proximity to dense human populations.
- Sewerage water, if not treated properly before application, this wastewater can contaminate crops or surrounding vegetation with pathogens that make them unsafe for human consumption. This is a food safety concern.
- The disposal of manure is a concern as well, since manure from industrial livestock systems may contain levels of chemicals such as nitrogen, phosphorus and heavy metals which characterize it as a solid waste when used in excess. This is not only

contd. on page 32

Giloy : Role of Herbs in Feeding Poultry

✎ **Swati Ruhil, Vikas Khichar[2] and Vijayata Choudhary[3]**
Department of Veterinary Gynaecology
Lala Lajpat Rai Univ. of Vety. & Animal Sciences, Hisar

Poultry farming plays an important role in improving the socio-economic status of the rural people who largely depend on the mixed farming system. Among the various feed additives, antibiotics and chemotherapeutic drugs are most frequently used as performance enhancer for inhibition of pathogenic bacteria, hence, improving the health and production of poultry. But now, it has been proved that antibiotics have residual effects, their prolonged use has developed resistant strains of bacteria. Hence, phytogenic feed additives came into the focus as non-antibiotic growth promoters. They have wider spectrum of action, no problem of developing resistant strains, they balance the gut flora and stimulate the feed intake, moreover, they are safe and environment friendly. Phytogenic feed additives may be used either as herbs, spices, essential oils or in the form of oleoresins. Different herbs can be incorporated in the poultry feed like bael, geloy, neem, aloe, ginger, asparagus, garlic, tulsi, pepper, cinnamon essential oil, etc. Geloy (*Tinospora cordifolia*) is the most exploited plant in pharmaceuticals. It is also known as gulvel, guduchi, geloi, gulancha and extensively used in ayurvedic preparations. It possesses multiple ethnomedicinal, pharmacological and medicinal activities. It is a popular herbal remedy in India, south-east Asia and other parts of the world. Giloy possesses various medicinal properties which are elaborated as below :

Anti-stress property : In poultry, heat stress is a major stress during hot summer months when the body heat load exceeds its dissipation. When temperature exceeds 30˚C there is reduction in feed intake, reduced feed conversion efficiency. Birds start panting leading to acid base imbalance and respiratory alkalosis due to bicarbonate deficiency. It also causes oxidative stress by realizing reactive oxygen species more than threshold level. Addition of dried geloy stem powder in diet @ 0.1% of growing broilers improves the growth rate, feed utilisation efficiency during extreme summer months.

Hepatoprotective property : Stem and roots of geloy have found to be rich in hepatoprotective agents like tinosporine and tinosponone which improves the growth rate and performance index of poultry. Commercial herbal preparation containing *T. cordifolia* is available as LIVOMYN by Charak Pharmaceuticals which can be used for hepatoprotection in poultry.

Anti oxidant property : *T. cordifolia* has an antioxidant and free radical scavenging activity. Stem extract of *T. cordifolia* has high amount of phenol, flavonoids, alkaloids and tannin which stimulates GSH and vitamin C.

Antibacterial activity : *T. cordifolia* is effective against *Salmonella typhi, Pseudomonas aeruginosa*, *Proteus mirabili*, *E. coli* and *Staphylococcus aureus*. When cow urine ark and *T. cordifolia* are used together in combination they have much better antibacterial effect against *E. coli* in broilers due to presence of certain alkaloids and resin. Cow urine ark @ 1 ml/broiler/day and *T. cordifolia* @ 0.5g/100g feed.

Immunomodulatory : *T. cordifolia* reduces and prevents the infectious diseases like flu, bacterial, viral infections, hepatitis and skin infections, etc. by multiple immunomodulatory actions like histamine release, immunoglobulin production, proliferation of lymphocytes, promotion of phagocytosis.

Effects on production : Inclusion of bael and geloy @ 1% as feed additives to broiler ration for six weeks resulted in increase in body weight gain, performance index and growth rate.

Commercial Preparation

- Geriforte (herbal powder of *T. cordifolia*) by Dabur ltd.
- Immu Plus R. has combination of four herbs : *T.cordifolia, Withonia somnifera, Ocimum sanctum,* and *Emblica officinalis*.

Herbs can be adopted as a new class of feed additives. They may provide a good alternative to replace the antibiotic growth promoters. But herbs are difficult to standardise due to their complex composition as well as the composition of plants may vary depending on the location, soil type, weather conditions, season during which the plant is grown, harvesting procedure and storage conditions. Moreover, our knowledge is still limited regarding the mechanism of actions of herbs. So, further research and development is required in this field to explain the efficacy and mode of action for each type and dose of active compound, as well as its possible interactions with other feed ingredients.

[2]Government Veterinary Hospital, Dhab Dhani, Bhiwani, Harayana
[3]Dept. of Vety. Parasitology, College of Vety. and Ani. Scs., RAJUVAS, Bikaner (Rajasthan)

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

from page 30 ..

a concern in urban and peri-urban areas, but also faces rural farms as well.

- The main challenge to the viability of both urban and peri-urban agriculture is land availability due to changing land rights, uses and values. High population densities lead to competition and conflicts over land and natural resources as land is converted from agricultural to residential and business uses.

Strategies : Urban policy makers and authorities can substantially contribute to the development of safe and sustainable peri-urban agriculture by creating a conducive policy environment and formal acceptance of peri-urban agriculture as an urban land use by integration of peri-urban agriculture in urban land use planning and zonification. Secondly, there should be provision of training and extension services to peri-urban producers, strengthening & supporting farmer organizations, development of adequate technologies for peri-urban agriculture, enhancing access to water inputs and basic infrastructure, enhancing access of urban farmers to credit and finance, facilitate (direct)marketing, supporting micro-enterprise development. Thirdly, by taking measures that prevent/reduce health and environmental risks associated with peri-urban agriculture. Improved coordination between health, agriculture and environmental departments, farmers' education on the management of health and environmental risks and training of food vendors and consumers.

from page 29 ..

contained in other chemical substances such as monoammonium phosphate or diammonium phosphate to serve as bioavailable nutrients. A common source of potassium is muriate of potash which is chemically potassium chloride. A soil fertility analysis is used to determine which of the more stable nutrients should be used. Nutrients and water are supplied near the active root zone through fertigation which results in greater absorption by the crops. As water and fertilizer are supplied evenly to all the crops through fertigation there is a possibility for getting 25-50 percent higher yield. Fertilizer use efficiency through fertigation ranges between 80-90 percent, which helps to save a minimum of 25 percent of nutrients. By this way, along with less amount of water and saving of fertilizer, time, labour and energy use is also reduced substantially.

Profitability of drip irrigation system

The initial investment in drip irrigation system mainly depends upon the spacing of crops. The drip irrigation technology has been found quite beneficial in several respects. It has provided higher yields per acre to the besides savings in the total cost of cultivation per acre. It also produced much higher benefit-cost ratios. There has been a considerable saving in labour cost in the application of irrigation water in the case of drip irrigation technology besides facilitating fertigation.

(पृष्ठ 26 का शेष)

बाँध की नहरें : कुछ स्थानों पर तालाब बनाकर पानी एकत्रित किया जाता है और फिर नहरें निकाली जाती हैं। मध्य और दक्षिणी भारत में इस तरह की नहरें पायी जाती हैं।

सिंचाई की आवश्यकता

सिंचाई की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती है :

1. ठण्डे मौसम में जलवायु का तापमान बहुत कम होता है, तब पाला पड़ने का डर रहता है। इस तरह की स्थिति में खेतों में सिंचाई कर देने से पाले का प्रभाव कम हो जाता है।
2. सिंचाई के खेतों में आवश्यक नमी की पूर्ति हो जाती है।
3. भूमि में रहने वाले कीटाणुओं से फसलों की रक्षा हेतु पानी की आवश्यकता होती है। पानी के द्वारा खेतों के बिलों में रहने वाले कीड़े एवं जंतु दीमक, छछूँदर, चूहे आदि खेतों से बाहर चले जाते हैं।
4. सिंचाई के द्वारा अनावश्यक लवणों को बहार निकाला जा सकता है।
5. पौधों में होने वाली क्रियाओं जैसे – प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, वाष्पोत्सर्जन आदि में जल का होना बहुत आवश्यक है।
6. पौधों में खाद्य पदार्थ एवं खनिज लवण पानी के द्वारा ही पहुंचते हैं।
7. पौधों में 90 प्रतिशत तक जल पाया जाता है, इसकी कमी से पौधे सूख जाते हैं। अत: इनकी सिंचाई अनिवार्य है।
8. खरीफ की फसल में पानी की पूर्ति वर्षा के जल से हो जाती है, लेकिन रबी व जायद की फसल के लिए पानी की पूर्ति सिंचाई द्वारा की जाती है।
9. भूमि पर पड़े हुए मृत पौधों एवं जंतु पानी के अभाव में सड़ नहीं पाते। इन्हें सड़ाने के लिए सिंचाई आवश्यक है।
10. जिन स्थानों पर वर्षा अपर्याप्त होती है या उस मृदा में जहाँ वर्षा का सारा जल रिसकर भूमि की निचली सतह में चला जाता है, वहां पौधों की सिंचाई की आवश्यकता होती है।
11. रबी और जायद की फसल में विभिन्न फसलें लेने के लिए पानी की मांग सिंचाई के द्वारा ही पूरी की जाती है।

सिंचाई की विधियाँ

सिंचाई की दो प्रमुख विधियां हैं :

1. धरातलीय सिंचाई विधि : इस विधि में पानी भूमि की ऊपरी सतह पर दिया जाता है। नहर तथा बाँध के पानी का इसमें प्रयोग होता है। धरातलीय सिंचाई के लिए प्रवाह सिंचाई विधि, क्यारी सिंचाई विधि, कुण्ड सिंचाई विधि, पाला सिंचाई विधि, अँगूठी सिंचाई विधि का प्रयोग किया जाता है।

2. बौछारी या छिड़काव विधि : इस विधि द्वारा सिंचाई उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ की भूमि में ढाल व रेतीली होती है। मृदा अपरदन वाले क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की सिंचाइयां की जाती हैं। बाग-बगीचों व छोटे क्षेत्रों में हज़ारा नामक यन्त्र से पानी छिड़का जाता है, जिससे भूमि में नमी बनी रहती है। यह कोमल एवं मूल्यवान पौधों के लिए उपयोगी है। शोभाकारी उद्यानों एवं शाक भाजी की पौधों के लिए उपयोगी है। बड़े क्षेत्रों में छिड़काव विधि द्वारा सिंचाई हेतु लोहे के या रबर के पाइप भूमि के अंदर नीचे दबा दिए जाते हैं। सहायक पाइप एक दूसरे के समानान्तर रखते हुए उनमें आवश्यकतानुसार दूरियों पर नॉज़िट लगा इनका सम्बन्ध नल और नल का सम्बन्ध जल स्त्रोत से कर दिया जाता है। मरुस्थलीय क्षेत्रों में यह सिंचाई के लिए विशेष रूप से उपयोग होती है।